भारत की
महान् साधिकाएँ
विश्वनाथ मुखर्जी

भारत की महान् साधिकाएँ

विश्वनाथ मुखर्जी

अनुराग प्रकाशन, वाराणसी

BHĀRATA KĪ MAHĀNA SĀDHIKĀYEN

[*Category* : Biography]

by

Vishwanath Mukherjee

ISBN : 978-81-89498-31-3

तृतीय संस्करण : 2015 ई०

[3rd Edition : 2015]

मूल्य : साठ रुपये (Rs. 60.00)

Publisher | *प्रकाशक*

ANURAG PRAKASHAN | **अनुराग प्रकाशन**

Chowk, Varanasi - 221001 | चौक, वाराणसी-221 001

[U.P. INDIA] | [उत्तर प्रदेश, भारत]

Phone & Fax : (0542) 2421472

E-mail : vvpbooks@gmail.com • sales@vvpbooks.com

Shop at : www.vvpbooks.com

मुद्रक

वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०

चौक, वाराणसी-221 001

श्रीमती शकुन्तला श्रीया, श्रीमती शारदा केडिया
श्रीमती आशा गुप्ता, श्रीमती कनक तोदी
को
सस्नेह

पुरोवाक्

भारतीय वाङ्मय में नारी को शक्तिरूपा देवी कहा गया है। सभी देवताओं ने देवी की पूजा की है—आद्याशक्ति के रूप में। स्वयं शंकर ने नारी की महिमा की वृद्धि के लिए अर्द्धनारीश्वर रूप ग्रहण किया था। सती-महिमा से हमारे धार्मिक ग्रंथ समृद्ध हैं।

पुरुष साधकों के साथ-साथ साधना के क्षेत्र में महिलाओं का योगदान कम नहीं है। प्रस्तुत संग्रह की सभी साधिकाएँ अपने-आपमें अद्‌भुत हैं। चाहे वह माँ शारदा हों या गोपाल की माँ, सिद्धिमाता हों या गौरी माँ। प्रत्येक की साधना अलग-अलग ढंग की है।

माँ शारदा परमहंस रामकृष्णजी की पत्नी थी। बचपन में ही उन्हें ज्ञात हो गया था कि उनका विवाह परमहंसजी के साथ होगा। उधर परमहंसजी भी इस सत्य को जानते थे। अपने गुरु तोतापुरी के निर्देशानुसार दोनों पति-पत्नी एक ही बिस्तर पर नौ मास शयन करते रहे, पर किसी के मन में काम-भावना उत्पन्न नहीं हुई। स्वयं परमहंसजी ने अपने इष्ट काली माता से निवेदन किया था—"माँ, उसकी कामभावना नष्ट कर दो।" आगे चलकर उन्होंने माता शारदा की चरण-पूजा अपने इष्ट देवता के रूप में की। यहाँ तक कि अपने निधन के बाद सूक्ष्म रूप में प्रकट हो निरन्तर माँ शारदा की सहायता करते रहे। कभी भी वैधव्यसूचक वस्त्र धारण करने नहीं दिया।

माँ शारदा की माँ ने एक बार परमहंस से कहा था कि मेरी बेटी को संतान नहीं हो रही है। परमहंसजी ने कहा—"माँ, घबराती क्यों हो? उसे इतनी संतानें होंगी कि दिन-रात 'माँ-माँ' स्वर सुनते-सुनते वह पागल हो जायगी।"

आगे चलकर रामकृष्णजी के सभी शिष्य माँ शारदा को 'माँ' के रूप में सम्बोधन करते रहे। अगर माँ शारदा कृपा-आशीर्वाद न देतीं तो विवेकानन्दजी विदेशों में सफलता प्राप्त न करते।

गौरी माँ भी एक कर्मठ महिला थीं। परमहंसजी ने योगबल से अपने पास बुलाकर उन्हें अपना शिष्य बनाया था। स्वभाव से वे जितनी तेजस्वी थीं, उतनी ही कर्मठ थीं। बंगाल की अनाथ महिलाओं की मसीहा थीं।

गौरी माँ की भतीजी दुर्गा माँ का जीवन कम अद्‌भुत नहीं रहा। सम्पूर्ण भारत में एक यही महिला थीं जिनका विवाह पुरी के जगन्नाथ-विग्रह से हुआ था। वे आजीवन भगवान् जगन्नाथ को अपना पति मानती रहीं।

गोपाल की माँ जो कि बचपन में विधवा हो गयी थीं, अपनी निष्ठा और लगन से परमहंसजी को गोपाल (कृष्ण का बालरूप) के रूप में प्राप्त की थीं। उनके दिमाग में कभी यह विचार ही नहीं उत्पन्न हुआ कि यह नन्हा बालक कब, कहाँ से आ गया। वह आजीवन उस बालक को गोद में लिए उसकी सेवा करती रहीं।

सिद्धिमाता अपने नाम के अनुसार पूर्ण योगसिद्ध रहीं। इन्हें घर बैठे सारी ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त हो गयी—केवल नाम जपने से। उपासना या साधना करने की आवश्यकता नहीं हुई। दिन-रात अपने भाव में खोयी रहती थीं। अपने जीवन में कभी उन्होंने मोटर तक नहीं देखी। घर से गंगा-स्नान करने जातीं और फिर अपने कमरे में आकर नाम जपतीं। प्रत्यक्ष रूप में अनेक देवी-देवताओं का दर्शन करती रहीं। उनके शरीर में ही मंत्र अपने-आप उत्कीर्ण हो जाते थे जिसे पढ़कर लोग शिष्य बन जाते रहे।

आनन्दमयी माँ बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की एक महान् संत-महिला थीं। शिक्षित न होते हुए भी वे धर्म, दर्शन, वेदान्त के गूढ़ प्रश्नों का इस प्रकार उत्तर देती थीं कि बड़े-बड़े विद्वान् चकित रह जाते थे। सिद्धिमाता की भाँति आपके भी भाव स्वतः प्रस्फुटित हुए थे। यहाँ तक कि आपके पति भोलानाथजी ने आपका शिष्यत्व स्वीकार कर 'माँ' कहा था।

शोभा माँ को रामदास काठिया बाबा के शिष्य सन्तदास बाबाजी से नाम प्राप्त हुआ और बचपन से माता आनन्दमयी की भाँति जिज्ञासुओं के प्रश्नों का उत्तर देती रहीं। सिद्धिमाता की भाँति आपने अनेक देव-देवियों के दर्शन किये हैं।

—लेखक

अनुक्रमणिका
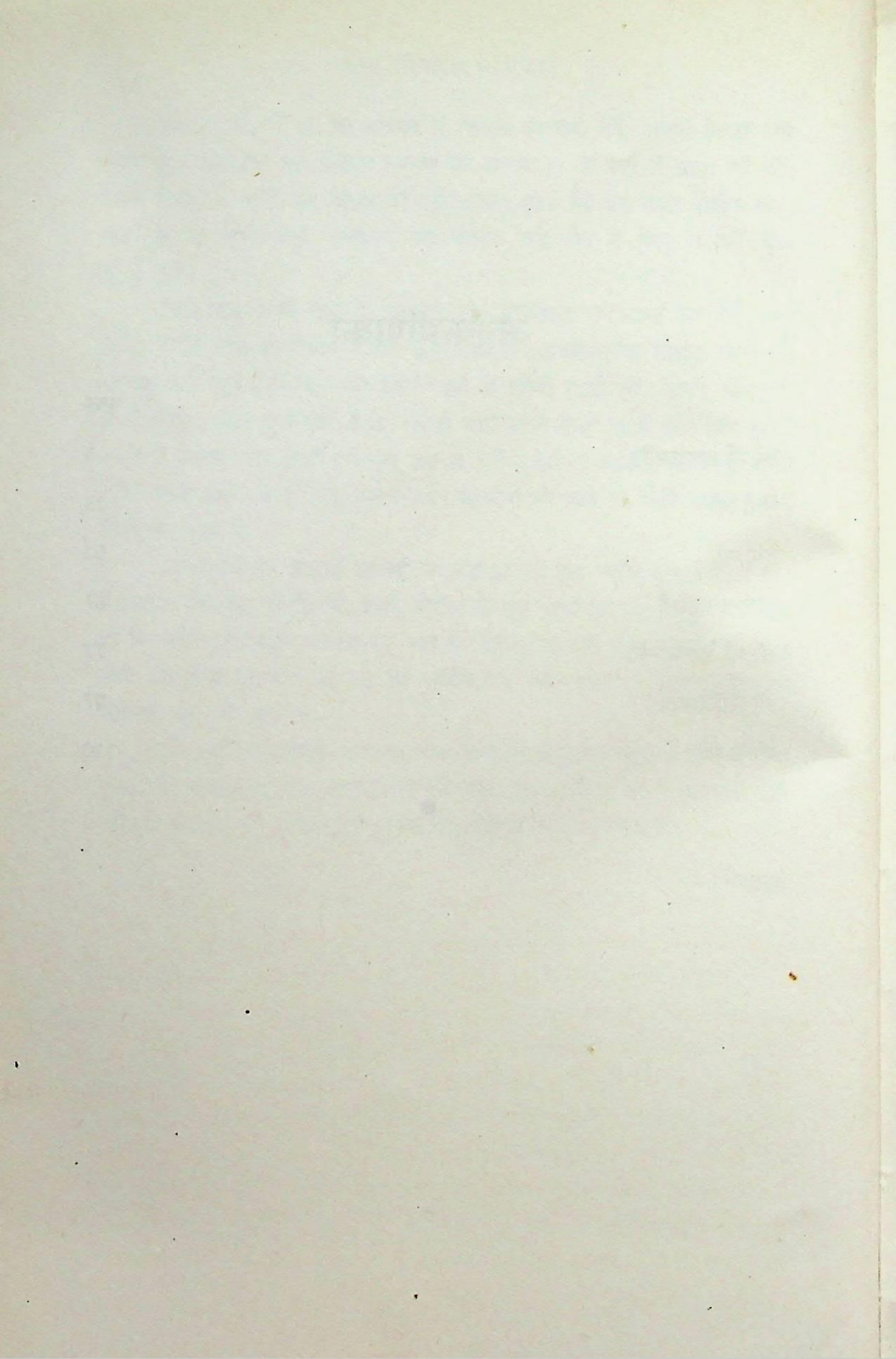
श्री माँ शारदामणि

कमरे में प्रवेश करते हुए रामचन्द्र मुखोपाध्याय ने अपनी पत्नी श्रीमती श्यामासुन्दरी से कहा—"अजी, सुनती हो? मैं कुछ दिनों के लिए कलकत्ता जा रहा हूँ। विशेष कार्य है।"

श्यामादेवी ने कहा—"अच्छी बात है। अगर आज्ञा दो तो कुछ दिनों के लिए मैं घर चली जाऊँ? कलकत्ता से वापस आते समय वहाँ से लेते आना।"

रामचन्द्र ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। वे कलकत्ता रवाना हुए और श्यामादेवी अपने पित्रालय चली आयीं।

नित्य स्नान करने के बाद श्यामादेवी गाँव में स्थित देवी-मंदिर में दर्शन करने जाती थीं। उनमें बचपन से ही यह आदत थी। एक दिन दर्शन करने के पश्चात् घर वापस आ रही थीं। दोपहर का वक्त, तेज धूप के कारण एक पेड़ के नीचे विश्राम करने लगीं। चारों ओर सुनसान मैदान था। अचानक उन्होंने अनुभव किया कि कहीं से घुँघरुओं की आवाज आ रही है। इस आवाज को सुनते ही वह चकित दृष्टि से चारों ओर देखने लगीं।

एकाएक एक वृक्ष की आड़ से एक अपरिचित नन्हीं बालिका प्रकट हुई और मुस्कराती हुई बोली—"माँ, मैं जल्द तुम्हारे घर आ रही हूँ।"

निर्जन प्रांतर में एक शिशु बालिका को पायजेब पहने, अकेली इस तरह बात करते देख श्यामादेवी भयभीत हो उठीं। उनके मुँह से यह भी नहीं निकला कि तुम कौन हो? मेरे यहाँ क्यों आओगी? तभी वह बालिका गायब हो गयी। इस दृश्य को देखते ही वह बेहोश हो गयीं।

फिर जब आँखें खुलीं तो देखा कि वह अपने कमरे में लोगों से घिरी हुई हैं। कब, कौन ले आया या स्वयं ही चलकर आयीं, यह सब उन्हें मालूम नहीं हो सका। लोग तरह-तरह के प्रश्न करने लगे, पर वह चुपचाप छत की ओर देखती रही। अगर वह सही बात कहतीं तो शायद लोग विश्वास न करते। गाँव का वातावरण है। महिलाएँ आपस में कहती रहीं कि किसी शै का प्रभाव पड़ गया है। अपदेवता के मार्ग में आयी होंगी या भूल से उन पर पैर पड़ गया होगा।

कलकत्ता से वापस आते वक्त रामचन्द्र अपनी ससुराल आये। बातचीत के सिलसिले में श्यामादेवी की घटना ज्ञात हुई तो चौंक उठे। उन्होंने कहा—"ठीक इसी प्रकार की घटना मेरे साथ हुई थी।" स्वप्न में एक लड़की ने आकर कहा—"पिताजी, मैं आपके घर आ रही हूँ।"

दिन के बारे में पूछताछ करने पर ज्ञात हुआ कि पति तथा पत्नी दोनों के साथ एक ही दिन यह घटना हुई थी। इन दोनों ने अनुमान लगाया कि शायद किसी देवी का आविर्भाव उनके घर शीघ्र होनेवाला है।

❑ ❑ ❑

22 दिसम्बर, सन् 1853 ई०, शुक्रवार के दिन रामचन्द्र मुखोपाध्याय के घर साक्षात् जगद्धात्री देवी का आविर्भाव हुआ। उलू-ध्वनि के माध्यम से लोगों को ज्ञात हुआ कि आज गाँव में एक नये शिशु ने जन्म लिया है। नामकरण के दिन इस शिशु का नाम रखा गया—शारदामणि।[1]

रामचन्द्र की आय सामान्य थी। कई बीघे में खेती करते और शेष समय में पौरोहित्य। इसी आय से किसी प्रकार जीवन-यापन करते रहे। जीवन की आवश्यकताएँ कम थीं, इसलिए परिवार में संतोष था।

धीरे-धीरे शारदा बड़ी होती गयी। लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा कि बालिका स्वभाव से बहुत ही शान्त है। लड़ाई-झगड़ा करना दूर रहा बल्कि दूसरों को लड़ते देख उनके झगड़े को वह सुलझा देती थी। अपनी इस विशेषता के कारण वह न केवल हमजोलियों में बल्कि बुजुर्गों की दृष्टि में ऊँची हो गयी।

शारदा में एक विशेषता यह थी कि वह उन खेलों को अधिक पसन्द करती थी जिसमें पूजा-ध्यान करने का अवसर मिले। बचपन से ही वह काली तथा लक्ष्मी

1. बंगला में सारदामणि नाम लिखा गया है, पर हिन्दी में भी कुछ लोगों ने यही नाम लिखा है। वास्तव में शारदामणि या शारदादेवी नाम शुद्ध है।

की पूजा करती, पिताजी की तरह ध्यान करती। उसकी इस प्रवृत्ति से लोग चकित रह जाते।

एक बार विचित्र घटना हुई थी। पड़ोस के एक घर में जगद्धात्री देवी की पूजा हो रही थी। शारदा-मूर्ति के सामने वह ध्यान लगाये बैठी थी। इसी समय गाँव के वृद्ध राम घोषाल देवी-दर्शन के लिए आये। मूर्ति के सामने साष्टांग प्रणाम करने के बाद उनकी नजर शारदा पर पड़ी तो वे चौंक उठे। बार-बार देखने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि देवी-मूर्ति और शारदा का चेहरा एक-सा है। यह दृश्य देखकर वे इस कदर डर गये कि बिना कुछ बोले चुपचाप चले गये।

शारदा जब घर का धान धोती या खेत में काम करती तब एक काली लड़की आकर उसका हाथ बँटाती थी। वह बोलती कम थी। लेकिन ज्यों ही कोई पास आता त्यों ही वह लड़की न जाने कहाँ गायब हो जाती थी। इस रहस्य का कारण शारदा ने कई बार उससे पूछा, पर कोई जवाब नहीं मिला। शायद वह इस प्रश्न का जवाब देना नहीं चाहती थी।

गाँव का वातावरण था। उन दिनों बंगाल में लड़कियों को शिक्षा देने की प्रथा नहीं थी। सामाजिक दृष्टि से कन्याओं को पढ़ाने की अपेक्षा घर का काम कराया जाता था। जो लड़कियाँ पढ़ना चाहती थीं, उन्हें मना किया जाता था। शारदा के साथ ऐसी घटना हुई। वह कुछ दिनों तक छोटे भाई के साथ स्कूल गयी, फिर अचानक उसका जाना बन्द कर दिया गया। अब तक वह जितना ज्ञान अर्जित कर चुकी थी, उसी के आधार पर रामायण पढ़ लेती थी।

एक बार माँ के साथ ननिहाल गयी। शिहड़ में माँ का ननिहाल था। गाँव के एक सम्पन्न घराने में पूजा का आयोजन हो रहा था। इस पूजा को देखने के लिए गाँव के अधिकांश नर-नारी आये थे। शारदा अपनी माँ के साथ वहाँ मौजूद थी। उन दिनों वह बहुत छोटी थी।

आगत महिलाओं में से किसी महिला ने विनोद करने की गरज से पूछा—
"क्यों री शारदा, तू किससे विवाह करेगी?"

अन्य कोई लड़की होती और उसे विवाह के बारे में जानकारी होती तो शायद वह लज्जावश कुछ न कहती। लेकिन शारदा ने निस्संकोच भाव से वहाँ बैठे एक युवक की ओर इशारा किया।

वह युवक कामारपुकुर का गदाधर चट्टोपाध्याय था जो आगे चलकर परमहंस रामकृष्ण के नाम से विश्व-प्रसिद्ध हुआ। उस वक्त कौन जानता था कि सामान्य विनोद में भवितव्य छिपा हुआ है। अतिमानव (सुपरमैन) बचपन से ही अलौकिक चमत्कार दिखाने लगते हैं।

धीरे-धीरे पाँच वर्ष और बीत गये। उन दिनों समाज में गौरी-दान का महत्व था अर्थात् लोग बाल-विवाह करते थे। जो लोग इस प्रथा का उल्लंघन करते थे,

उन्हें जातिच्युत कर दिया जाता था। लोगों का ख्याल था कि बचपन में विवाह कर देने पर सास, माँ, ननद आदि की देखरेख में लड़कियाँ गृहस्थी सीख लेती थीं। बड़ी उम्रवाली दबाव में नहीं रहतीं।

❑ ❑ ❑

कलकत्ते के दक्षिणी क्षेत्र में रानी रासमणि का बनवाया हुआ बृहद् काली-मंदिर है। इस मंदिर के पुजारी गदाधर के बड़े भाई थे। बड़े भाई के निधन के पश्चात् गदाधर को मंदिर का पुजारी बनाया गया। सहायक के रूप में गदाधर का भाँजा हृदयराम सारा कार्य करता था। गदाधर नित्य देवी की पूजा करता रहा।

सहसा एक दिन गदाधर पूजा करते समय एक अद्‌भुत चिन्तन में खो गया। उसने सोचा—मैं जिस देवी की पूजा कर रहा हूँ, शायद वह मृन्मयी है। अगर यह देवी चिन्मयी होती तो मेरे आह्वान पर मौन न रहतीं। अवश्य अपना चिन्मय रूप दिखातीं।

ज्यों ही यह अद्‌भुत विचार उसके मन में आया त्यों ही काली देवी चिन्मयी बनकर प्रकट हो गयीं।

गदाधर 'माँ-माँ' कहते हुए बेहोश हो गया। इस घटना का पता किसीको नहीं चला, परन्तु काली माँ का चिन्मय रूप देखने के बाद से गदाधर में तेजी से परिवर्तन हो गया। वे हमेशा भावावेश में रहने लगे। लोगों ने इसे शारीरिक विकार समझा। सोचा कि जवान हो गया है, पत्नी के अभाव में इसके दिमाग का संतुलन बिगड़ गया है।

हितैषियों ने गदाधर की माँ को सलाह दी कि लड़के का शीघ्र विवाह करा दो, वरना यह बीमारी दूर नहीं होगी। पागल हो जायेगा। चौबीस वर्ष का हो गया है। क्या बूढ़ा हो जाने पर विवाह कराओगी? विवाह के बाद यह रोग दूर हो जायगा।

माँ को बात जँच गयी। इधर तब तक इस बात का प्रचार तेजी से हो गया कि गदाधर का दिमाग खराब हो गया है। अक्सर पागलपन का दौरा आता है। माँ ने सोचा—लड़के की इस स्थिति को देखकर भला कोई अपनी लड़की देगा?

माँ के परेशान चेहरे को देखकर गदाधर सारा रहस्य समझ गये। उन्होंने कहा—"चिन्ता मत करो माँ। एक बार तुम जयरामबाटी चली जाओ। वहाँ रामचन्द्र मुखर्जी की एक लड़की है। उसके बारे में मुखर्जी महाशय से बातचीत करो।"

लड़के की बातें सुनकर माँ अवाक् रह गयी। इसे कैसे मालूम हो गया कि जयरामबाटी में रामचन्द्र मुखर्जी की कोई लड़की है। अगर है तो क्या राजी होंगे? क्या कभी इस बारे में कोई बात हुई थी? उन्हें क्या मालूम कि उनका पुत्र एक महापुरुष है जो अपनी लीला दिखाने के लिए अवतरित हुए हैं।

कामारपुकुर से जयरामबाटी अधिक दूर नहीं था। केवल तीन मील के फासले पर था। घर में एक बहू आयेगी, इसी आशा को लेकर माँ जयरामबाटी गयी। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि बातचीत करते ही रामचन्द्र मुखर्जी राजी हो गये। रामचन्द्र ने प्रस्ताव रखा कि जेवरों के अलावा नकद तीन सौ रुपये वर पक्ष को देना पड़ेगा।

मई, 1859 ई० को गदाधर का विवाह हो गया। विवाह के पश्चात् गदाधर दक्षिणेश्वर चले गये और शारदा अपने पिता के पास चली आयी।

बचपन से ही शारदा कर्मठ और बुद्धिमती थी। नित्य खेत में काम करनेवाले मजदूरों के लिए दाना-गुड़ ले जाती, देखरेख करती। माँ के साथ सूत कातकर जनेऊ बनाती। इस प्रकार जीवन से संघर्ष करती हुई वह वय:-संधिकाल तक पहुँच गयी।

इधर गदाधर सर्वदा साधना में लगे रहने के कारण समाधिस्थ हो जाते थे। उनके व्यवहार और स्वभाव में बराबर परिवर्तन होता गया। उनकी इस स्थिति को देखकर लोग तरह-तरह की अफवाहें फैलाने लगे। विकृत रूप में ये अफवाहें जयरामबाटी तक पहुँच गयीं। ज्ञानी उन्हें साधक तथा अज्ञानी पागल समझने लगे।

जयरामबाटी में स्थित शारदा की सहेलियों ने इस अफवाह का उपयोग करना प्रारंभ किया। राह-घाट में उसे देखते ही कहने लगतीं—"वह देखो, पगले की बहू जा रही है। अरी श्यामा की बेटी, पगले की बहू।"

इन बातों को सुनकर शारदा चिंतित हो उठी। अक्सर उसके मन में यह प्रश्न उठता—"क्या लोगों का कहना सही है? अगर वे संन्यासी बन गये हैं तो क्या मुझे पत्नी के रूप में स्वीकार करेंगे?"

इन प्रश्नों के जाल में उलझकर वह निरन्तर उद्विग्न रहने लगी। अब वह इस बात की प्रतीक्षा करने लगी कि कब ससुराल से बुलावा आये और वह वहाँ जाकर वास्तविकता को देखे। प्रतीक्षा करते-करते दिन गुजरते गये, पर उधर से कोई बुलावा नहीं आया। शारदा ने निश्चय किया कि जब तक वह अपनी आँखों से पति की वास्तविक स्थिति को नहीं देखेगी तब तक वह किसीकी बात का विश्वास नहीं करेगी। मुमकिन है कि लोग चिढ़ाने या भ्रमवश ऐसा कह रहे हों।

आखिर एक दिन यह अवसर मिला। सन् 1872 ई० के मार्च महीने की बात है। फाल्गुन पूर्णिमा के अवसर पर गाँव से काफी लोग गंगा-स्नान के लिए कलकत्ता जा रहे थे। महाप्रभु गौरांग देव का आविर्भाव इसी दिन हुआ था। शारदा ने सोचा—स्नान-यात्रा के बहाने वह कलकत्ता जाकर अपने पति की वास्तविकता का पता लगायेगी।

इस बात की चर्चा उसने अपनी एक सहेली से की। सहेली के माध्यम से पिता के पास बात पहुँची। पिता ने कहा—"जब हमारी बेटी कलकत्ता जाना चाहती है तब गाँव के लोगों के साथ क्यों जायगी? मैं स्वयं अपने साथ लेकर जाऊँगा।"

उन दिनों लोग जयरामबाटी से कलकत्ता पैदल या पालकी पर जाते थे। पालकी से यात्रा करने पर काफी खर्च होता था। बाप-बेटी पैदल ही रवाना हुए। कच्ची उम्र, दूर का सफर, पैदल चलने की आदत नहीं। मार्ग में शारदा मलेरिया से पीड़ित हो गयी। बेटी की हालत देखकर रामचन्द्र बेचैन हो उठे। साथ के लोग इन्हें उसी स्थिति में छोड़कर आगे बढ़ गये।

लाचारी में रामचन्द्र को एक जगह आश्रय लेना पड़ा ताकि बेटी स्वस्थ हो जाय।

रात को शारदा ने स्वप्न में देखा कि एक काली-सी लड़की उसके बिछावन के पास आकर बैठ गयी। बाद में बिना कुछ बोले वह उसके सिर तथा बदन पर हाथ फेरने लगी। इससे शारदा के कष्ट में कमी होने लगी।

उत्सुकतावश शारदा ने पूछा—"तुम कहाँ से आ रही हो?"

लड़की ने कहा—"दक्षिणेश्वर से।"

शारदा ने कहा—"दक्षिणेश्वर से? वहीं मेरे पति रहते हैं। उनसे मिलने के लिए मैं वहाँ जा रही थी, पर इस बुखार के कारण शायद उनके पास पहुँच नहीं पाऊँगी।"

लड़की ने कहा—"चिंता मत करो। तुम्हारे लिए ही तो उसे वहाँ ठीक रूप से रखा है। कल तक तुम बिलकुल स्वस्थ हो जाओगी।"

इस लड़की के आश्वासन से शारदा के मन में हर्ष का संचार हुआ। उसे लगा, जैसे वह स्वस्थ हो गयी है और पति के पास पहुँच गयी है। एकाएक उसके मन में प्रश्न उठा कि आखिर यह लड़की है कौन? विस्मय से उसने पूछा—"तुम कौन हो?"

अतिपरिचित की भाँति लड़की ने कहा—"मैं तो तुम्हारी बहन हूँ।"

इस बात को सुनते ही वह गहरी नींद में सो गयी। दूसरे दिन जागने के बाद उसने अनुभव किया कि अब वह पूर्ण रूप से स्वस्थ है। इस चमत्कार से शारदा को बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके पूर्व ऐसी घटना कभी नहीं हुई थी।

सहसा उसे स्वप्न की बात याद आ गयी और उसी काली लड़की का ध्यान हो आया। उसे लगा, जैसे इसे कहीं देख चुकी है। धीरे-धीरे स्मरण हो आया कि यह वही लड़की है जो गाँव में काम-काज के वक्त सहायता देती रही।

उसने पिता से कहा कि अब वह बिलकुल ठीक हो गयी है। अब यहाँ से चल देना चाहिए। पिता ने कहा—"अभी तू काफी कमजोर है। एक पालकी ठीक करता हूँ, उसी पर चलना।"

अपने पिता के साथ जब वह दक्षिणेश्वर आयी तो अनजानी आशंका से उसका कलेजा धड़कने लगा। पिछले चार वर्ष से मुलाकात नहीं हुई है, फिर उनके

बारे में तरह-तरह की अफवाहें फैली हुई हैं। पता नहीं, वे किस रूप में ग्रहण करें। दूसरी ओर मन में दृढ़ विश्वास था कि सब कुछ भला होगा। रास्ते में बराबर अच्छे अलौकिक दर्शन होते रहे।

शारदा के आगमन का समाचार पाते ही गदाधर अपने कमरे से बाहर आये और पिता-पुत्री का स्वागत किया। यह दृश्य देखकर शारदा का सारा ऊहापोह समाप्त हो गया।

शारदा की ओर गौर से देखते हुए गदाधर ने पूछा—"लगता है, बीमार थी? चेहरा काफी सूख गया है। चिन्ता की कोई बात नहीं, कल ही डॉक्टर को दिखाऊँगा।" फिर एक व्यक्ति की ओर देखते हुए बोले—"जरा देखना भाई, यह भद्राकाल में तो नहीं आयी है?"

दूसरे दिन डॉक्टर साहब आये। दवा-इलाज प्रारंभ हो गया। जब तक वह बीमार रही तब तक गदाधर के कमरे में सोती रही। जिस दिन पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गयी, उसी दिन गदाधर ने अपनी पत्नी को माँ के पास भेज दिया।

आजकल गदाधर की माँ दक्षिणेश्वर मंदिर में स्थित नौबतखाने में रहती हैं। शारदा के आने पर गदाधर के भोजन का कष्ट दूर हो गया।

❑ ❑ ❑

सहसा एक दिन गदाधर ने शारदा से प्रश्न किया—"क्या तुम मुझे गृहस्थी की गाड़ी में जोतने आयी हो?"

शारदा ने तुरंत उत्तर दिया—"नहीं। मैं आपके इष्ट-मार्ग पर बढ़ने में सहायता देने आयी हूँ। आपकी सेवा करने आयी हूँ।"

इस उत्तर को सुनकर गदाधर प्रसन्न हो उठे। उन्हें ऐसे ही उत्तर की आशा थी।

काफी दिनों बाद शारदा के बारे में चर्चा चलने पर अपने भक्त से गदाधर ने कहा था—"अगर वह अन्य प्रकृति की होती और आत्मविस्मृत होकर मुझ पर आक्रमण करती तो मैं नष्ट हो जाता।"

सन् 1872 ई० में गदाधर के गुरु तोतापुरी आये। बातचीत के सिलसिले में गुरु ने गदाधर से कहा—"काम पर विजय पा सकते हो या नहीं, इसकी परीक्षा के लिए पत्नी के साथ एक बिछावन पर सोकर अनुभव करो।"

गुरु के इस आदेश का पालन करने के लिए गदाधर व्यग्र हो उठे। वे अपने इष्ट काली देवी के मंदिर में गये और देवी से प्रार्थना करने लगे—"माँ, उसके अन्तर की काम-भावना पूर्ण रूप से नष्ट कर दो ताकि तुम्हारी आराधना में विघ्न न आये।"

इस विनय के पश्चात् गदाधर अपनी पत्नी के साथ एक ही बिस्तर पर लगातार आठ माह तक सोते रहे। लेकिन इस बीच कभी भी इन दोनों के मन में संभोग की भावना उत्पन्न नहीं हुई।

जब शारदा पहले-पहल यहाँ आयी थी तब पति के समाधि-ध्यान की स्थिति देखकर घबरा गयी थीं। उन्होंने यह भी देखा था कि रह-रहकर पति संज्ञाहीन हो जाते हैं। इस तरह के दृश्य इसके पूर्व उन्होंने कभी देखा नहीं था, इसलिए बहुत डर गयी थीं। प्रथम दिन तो बुरी तरह डरकर हृदयराम को बुलाने लगी थीं। हृदय ने आकर न जाने कौन-सा मंत्र गदाधर के कानों में सुनाया। थोड़ी देर बाद उन्होंने देखा कि उनके निष्प्राण शरीर में जैसे प्राण लौट आया है। बाद में हृदयराम ने उस मंत्र को मामी को बतलाकर कहा कि आगे जब ऐसी परिस्थिति आये तब आप इनके कान में कह दीजिएगा। कुछ देर बाद स्वतः प्रकृतिस्थ हो जायेंगे।

लेकिन सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि ऐसी घटना होने का कोई निश्चित समय नहीं था। फलतः शारदादेवी सर्वदा चौकन्ना रहने लगीं। लगभग आठ माह तक उन्हें जागते रहना पड़ा था। बाद में पति की आज्ञा से नौबतखाने में जाकर रहने लगीं।

नौबतखाने का कमरा बहुत छोटा था। कबूतर के दरबे की तरह। वहाँ काम करने में बड़ी परेशानी होती थी। नित्य भोर में शारदा को गंगा-स्नान के लिए जाना पड़ता था। तीन बजे काफी अँधेरा रहता था, पर जब वे स्नान के लिए जातीं तब उनके कमरे से घाट तक एक हलकी रोशनी झिलमिला उठती थी। स्नान के बाद भोंजन बनाना, खाना परोसना और अन्त में सास की सेवा करनी पड़ती थी।

एक दिन अपने पति के पैर दबाती हुई शारदा ने पूछा—"यह बताओ, मुझे तुम क्या समझते हो?"

गदाधर ने शान्त भाव से कहा—"जो माँ मंदिर में हैं, जिन्होंने मुझे जन्म दिया है, वही इन दिनों नौबतखाने में निवास कर रही हैं और इस वक्त मेरे चरण दबा रही हैं।"

इसी दिन शारदादेवी जगज्जननी वधू के रूप में, साधारण मानवी के बदले श्री माँ के रूप में प्रतिष्ठित हुई थीं। गदाधर तो इसके पूर्व ही श्री परमहंस रामकृष्ण के रूप में प्रसिद्ध हो गये थे।

❑ ❑ ❑

वर्षा के बाद शरद्-ऋतु आयी। परमहंसजी ने निश्चय किया कि इस बार जगन्माता की विधिवत् पूजा करेंगे। पूजा का समस्त आयोजन करने के बाद वे रात को 9 बजे कमरे के भीतर आकर पूजा पर बैठ गये। वेदी पर आराध्य देवी की मूर्ति नहीं थी। साज-शृंगार उसी तरह का है। इसके पूर्व वे शारदादेवी को आदेश दे चुके थे कि पूजा के समय मेरे कमरे में मौजूद रहना। शारदादेवी ठीक समय पर कमरे में आ गयीं।

मंत्रोच्चार के बाद सभी सामग्रियों का शोधन किया गया। इसके बाद इशारे से शारदामणि को कहा गया कि वे वेदी पर आकर बैठ जायँ। शारदामणि मंत्रमुग्ध की

भाँति वेदी पर आकर बैठ गयीं। अभिषेक तथा मंत्रोच्चार करने के बाद परमहंसजी कहने लगे—"हे सर्वशक्ति अधीश्वरी, माँ त्रिपुरसुन्दरी, सिद्धिद्वार उन्मुक्त करो। इनके शरीर-मन को पवित्र कर इनके शरीर में प्रकट हो।"

देवी-रूप में रामकृष्ण देव ने षोडशोपचार-विधि से शारदादेवी की पूजा समाप्त की। भोग में से कुछ पदार्थ उठाकर श्री माँ को खिलाया। प्रसाद खाते ही माँ का बाह्यज्ञान तुरत लुप्त हो गया। वे समाधिस्थ हो गयीं। इस प्रकार इन्द्रिय-जगत् की सीमा को पार कर दोनों बुद्धि के अंतिम आवरण को चीरकर अपने अद्वैत स्वरूप में मिल गये। रक्त-मांस की बनी जगन्माता की पूजा करते हुए अपनी समस्त साधना को परमहंसजी ने देवी के चरणों में अर्पित करते हुए कहा—

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥
सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते॥

श्री श्री माँ की देवी रूप में पूजा हुई। अब सवाल यह उठता है कि शारदा देवी ने इस महान् साधक की पूजा को कैसे हजम किया? वास्तव में वे जगन्माता के रूप में अवतरित हुई थीं। रामकृष्णजी ने स्वयं कहा है कि मैंने अपनी पत्नी के बाह्य आवरण के भीतर जगन्माता का साक्षात् दर्शन किया था। संसार के धार्मिक इतिहास में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं है जिसमें किसी धर्मगुरु ने अपने शिष्य या पत्नी की देवी के रूप में षोडशोपचार ढंग से पूजा की हो। अब तक जितने अवतारी पुरुष इस पृथिवी पर आये हैं, किसी ने ऐसा नहीं किया है।

संभवत: इसीलिए एक बार हृदय ने अपनी मामी से कहा था—"तुम मामा को 'पिताजी' कहकर क्यों नहीं पुकारती?"

शांत भाव से शारदामणि ने जवाब दिया था—"केवल पिता ही क्यों? वे मेरे पिता, माता, भाई, मित्र, आत्मीय सब कुछ हैं।"

बात बिलकुल ठीक है। जीवन के अंतिम काल तक श्री रामकृष्ण देव शारदामणि को जगन्माता के रूप में देखते रहे।

❑ ❑ ❑

एक दिन एक महिला आयी और श्री माँ से बोली—"माँ, थाली लाइये। मैं ठाकुर (परमहंस देव) को भोजन दे आती हूँ।"

वह महिला भोजन की थाली परमहंस के सामने रखने के बाद चली गयी। थोड़ी देर बाद श्री माँ आयीं तो देखा कि परमहंसजी चुपचाप बैठे हैं। इन्हें देखते ही ठाकुर ने कहा—"तुम्हें यह मालूम है कि मैं हर किसी का छुआ भोजन नहीं करता। तब क्यों दूसरे के हाथ थाली भिजवायी?"

श्री माँ ने संकोच के साथ कहा—"आज खा लो।"

"भविष्य में ऐसी गलती करोगी तो मैं खाना नहीं खाऊँगा।"

"नहीं, नहीं। ऐसा मत कहो। मुझसे ऐसा नहीं हो सकेगा।"

"क्यों?"

"अगर कोई मुझे 'माँ' कहकर कुछ कहेगा तो उसे कैसे भगा सकूँगी? भविष्य में ऐसी कोई बाधा न आयी तो मैं स्वयं थाली लेकर आऊँगी।"

प्रतिवर्ष बरसात में आँव की बीमारी फैलती है। स्री माँ इस रोग से पीड़ित हो गयीं। उनकी हालत देखकर परमहंसजी ने कहा—"कुछ दिनों के लिए गाँव चली जाओ। तुम्हारी हालत यहाँ खराब हो रही है।"

श्री माँ पीहर आ गयीं। इनकी शक्ल देखते ही माँ श्यामासुन्दरी चौंक उठीं—"हाय भगवान्, यह कैसी शक्ल हो गयी है तेरी?"

इसी बीच रामकृष्णजी के बड़े भाई रामेश्वर तथा शारदामणि के पिता रामचन्द्र का निधन हो गया था। गाँव का इलाका। यहाँ न डॉक्टर और न वैद्य। इलाज के नाम पर पत्ते-बीज। शौच के लिए श्री माँ को बार-बार तालाब के उस पार जाना पड़ता था। एक बार तो कमजोरी के कारण गिर पड़ीं। किसी प्रकार गाँव के मंदिर तक आकर वहाँ सो गयीं। मूर्ति की ओर देखती हुई बोलीं—"माँ, मुझे स्वस्थ बनाओ और नहीं तो अपने पास बुला लो।"

इतना कहकर वे वहीं सो गयीं। तन्द्रावस्था में श्री माँ ने सुना जैसे कोई कह रहा है—"शारदा बेटी, उठो। मंदिर के पीछे सूरन के पौधे से मिट्टी निकालकर खा लो। ठीक हो जाओगी।"

यह बात सुनते ही वह चौंककर उठ बैठी। मंदिर के पीछे जाते ही सूरन का पौधा मिला। मिट्टी लेकर उसे खा गयीं। शाम तक सारा कष्ट दूर हो गया। दूसरे दिन यह समाचार पूरे गाँव मैं फैल गया। गाँव की यह देवी जाग्रत हैं। यह अफवाह फैलते ही उपेक्षित मंदिर भक्तों की पूजा से मुखरित हो उठा।

कुछ दिनों बाद श्यामासुन्दरी अपनी लड़की को लेकर दामाद के पास आयीं। इन्हें देखते ही भाँजा हृदय चिढ़ उठा। दरअसल वह परमहंस के नाम पर रकम वसूल करता था। ठाकुर की ख्याति बढ़ जाने पर लोग उनका दर्शन करने आते थे। जो लोग उसे धन का लालच देते, केवल उन्हीं को भीतर जाने देता था। शेष लोगों से कहा करता था—"अभी दर्शन नहीं होगा। समाधि में हैं, सो रहे हैं, बीमार हैं।"

श्री माँ के आगमन से नुकसान होगा। यह समझकर उसने अत्यंत कटु व्यवहार किया। स्वयं परमहंस ने एक बार उससे कहा था—"हृदय, मेरे साथ चाहे जितना गंदा व्यवहार करना है, कर लेना। लेकिन अपनी मामी को कभी मत छेड़ना। कहीं उसका भीतरी रूप प्रकट हो गया तो खैर नहीं।"

यहाँ तक कि उसने एक नकली परमहंस बनाकर कीर्तन-भजन प्रारंभ कर दिया था। अक्सर कहा करता था—"अगर मैं न रहता तो तुम्हारा 'परमहंस गिरि' कैसे चलता?"

हृदय के कटु वाक्यों और व्यवहार से परमहंस इतने तंग आ गये थे कि एक बार रोते हुए देवी के सामने जाकर उन्होंने कहा—"माँ, कब तक तू मुझे हृदय के व्यवहार से सतायेगी? मेरा सब बंधन तो दूर हो गया है।" यहाँ तक कि एक बार गंगा में कूदने गये थे। एकाएक ख्याल आया कि कहीं ऐसा करने पर भक्तों का अहित न हो जाय। फलत: पुन: देवी के सामने आकर कहने लगे—"माँ, उसके अपराधों को क्षमा कर देना। शायद वह मुझे बहुत चाहता है, इसलिए ऐसा व्यवहार करता है।"

मंदिर की आमदनी से हृदय गाँव में काफी जमीन खरीद चुका था। सूद पर रुपये देता था। तीन साल तक दुर्गा-पूजा का उत्सव कर चुका था। अपने को दक्षिणेश्वर मंदिर का मालिक समझने लगा था। यहाँ तक कि असली मालिक के परिवार के लोगों से भी रूखा व्यवहार करता था।

दक्षिणेश्वर मंदिर की जिस दिन स्थापना हुई थी उस दिन स्थापना-दिवस के उपलक्ष्य में प्रतिवर्ष एक उत्सव होता था। सन् 1881 ई० वाले दिन मालिक का मझला लड़का त्रैलोक्य विश्वास सपरिवार मंदिर में आया। उनके साथ उनकी छोटी लड़की भी थी। हृदयराम के मन में आया कि इस कुमारी लड़की की तांत्रिक मत से पूजा करूँ। उसने पूजा की। लड़की जब अपने माँ-बाप के पास पहुँची तब उसके पैरों पर चंदन के दाग देखकर कारण पूछा गया। लड़की ने सही घटना का विवरण दिया। इतना सुनते ही त्रैलोक्य विश्वास क्रोध से भर उठा। ब्राह्मण के लड़के ने शूद्र की लड़की की पूजा की है? कहीं इससे हमारा अकल्याण न हो।

उन्होंने तुरत हृदयराम से कहा—"अगर अपना भला चाहते हो तो तुरत यहाँ से निकल जाओ वरना दरवानों को बुलाकर तुम्हारी अच्छी तरह मरम्मत करायी जायगी।"

इधर किसीने आकर परमहंसजी को इस घटना की सूचना देते हुए कहा—"बाबू ने कहा है कि हृदयराम के सभी नाते-रिश्तेदार तुरत मंदिर खाली कर दें। यहाँ उसका कोई भी आदमी नहीं रहेगा।"

यह आज्ञा सुनकर परमहंस रामकृष्ण वहाँ से जाने लगे। इस बात की सूचना मिलते ही त्रैलोक्य विश्वास दौड़े हुए आये और क्षमा माँगते हुए कहा—"मैंने आपको जाने के लिए नहीं कहा है। आप नहीं जा सकते। मैंने केवल हृदयराम और उसके सहयोगियों के लिए कहा है। इस वक्त तो आप हमें आशीर्वाद दीजिए ताकि इस लड़की का अमंगल न होने पाये।"

रामकृष्णजी ठहर गये। उन्होंने लड़की के सिर पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिया। फिर हलके कदमों से अपने कमरे में चले गये।

बाद में उन्होंने कहा था—"हृदय का व्यवहार इधर बहुत खराब हो गया था। माँ ने उसे यहाँ से हटा दिया।"[1]

हृदयराम ने श्री श्री माँ के साथ भी अभद्र व्यवहार किया था। उसकी शिकायत परमहंसजी के पास पहुँच गयी। जब उन्होंने इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा और न किया तब शारदा माँ को अपार कष्ट हुआ। वे अपनी माँ को लेकर जयरामबाटी चली गयीं। इस घटना के बाद से ही हृदयराम का पतन प्रारंभ हुआ। शायद श्री माँ के अपमान का फल उसे हाथोंहाथ मिल गया।

हृदयराम का मंदिर में दबदबा इतना बढ़ गया था कि वह त्रैलोक्य विश्वास की उपेक्षा करने लगा था। उसी हृदयराम को आखिर एक दिन बोरिया-बिस्तर लेकर चले जाना पड़ा। अनाचार-अत्याचार का फल मनुष्य को भोगना पड़ता है। चलते समय उसने मामा के पास जाकर कहा—"मामा, तुम भी मेरे साथ चले चलो वरना इसी प्रकार एक दिन तुम्हें भी हटा दिया जायगा। अपमानित होकर निकलने से अच्छा है, सम्मान के साथ-साथ चले चलो।"

लेकिन परमहंसजी त्रैलोक्य विश्वास के अनुरोध पर ठहर गये थे। वे नहीं गये।

हृदयराम के जाने के बाद रामकृष्ण का भतीजा प्रधान पुजारी बना। वह पूजा-पाठ में इतना व्यस्त रहने लगा कि परमहंसजी का ख्याल नहीं रखता था।

इधर परमहंसजी अधिकतर समाधि में लीन रहते थे। उन्होंने भोजन किया या नहीं, उन्हें किस चीज की जरूरत है आदि का वह कोई ध्यान नहीं रखता था। मंदिर में वह एक प्रकार से लावारिसों की तरह रह रहा था। उसकी यह स्थिति देखकर लोगों ने जयरामबाटी श्री माँ के पास समाचार भेजा ताकि वे यहाँ आ जायँ।

कई दिनों बाद श्री माँ को यह ज्ञात हुआ कि गाँव से कुछ लोग गंगा-स्नान के लिए कलकत्ता जा रहे हैं। अपनी माँ से शारदामणि ने साथ चलने का आग्रह किया। श्यामासुन्दरी अपने दामाद के यहाँ से अपमानित होकर चली आयी थीं। उस पीड़ा को वे भूल नहीं सकी थीं, इसलिए वे कलकत्ता जाने को राजी नहीं हुईं। लाचारी में श्री माँ गाँव के लोगों के साथ चल दीं।

जयरामबाटी से कलकत्ता आने के लिए लोग अहल्याबाई मार्ग से तारकेश्वर आते थे। इस इलाके में भीखदास नामक डाकू का बड़ा आतंक था। गाँव के लोगों के साथ श्री माँ जब भीखदास के इलाके में आयीं तब शाम हो गयी थी। लोग पेड़ के नीचे आराम करने लगे। मानसिक चिन्ता के कारण श्री माँ को नींद नहीं आ रही थी।

---

1. मासिक वसुमती, 15वाँ वर्ष, 2रा खण्ड, 5वाँ अंक। फाल्गुन, 1343 फसली, श्री दुर्गाप्रसाद मित्र।

धीरे-धीरे अँधेरा बढ़ने लगा। एकाएक माँ ने अनुभव किया जैसे उस घने अंधकार में परमहंसजी उनसे कह रहे हैं—''जल्दी आगे बढ़ो। यहाँ मत बैठी रहो।''

इस आदेश को सुनते ही वे अन्यमनस्क भाव से आगे बढ़ गयीं। ठीक आधी रात के समय उनकी मुलाकात दस्यु-सरदार भीखदास से हुई। श्री माँ के शरीर पर नाना प्रकार के अलंकारों को देखकर उसकी आँखें चमक उठीं। अभी कुछ देर पहले वह एक जगह डकैती करने गया था जहाँ से खाली हाथ लौटा था।

''ठहरो, कौन जा रहा है?'' सुनसान जंगल में भीखदास की आवाज गरज उठी।

श्री माँ ने निर्भीक रूप से उत्तर दिया—''क्यों पिताजी, आप मुझे पहचान नहीं पाये? मैं आपकी बेटी हूँ।''

भीखदास चौंका। पूछा—''मेरी बेटी?''

सहसा उस घने अंधकार में प्रकाश हुआ। भीखदास ने आश्चर्य से देखा—''अरे, यह तो अपनी बिटिया है जिसे अस्वस्थ दशा में घर छोड़ आया है। यह यहाँ कैसे आ गयी? इतने जेवर कहाँ से पा गयी?''

नृशंस व्यक्तियों के हृदय में भी ममता-प्यार, भय-संकोच रहता है। श्री माँ में अपनी लड़की की आकृति देखकर वह रोमांचित हो उठा। बोली—''माँ, यह कैसी तेरी माया है या तू मेरी लड़की है?''

एकाएक वह आखृति गाय हो गयी। भीखदास ने भयभीत होकार कहा—''माँ, तुम अकेली कहाँ जा रही हो?''

श्री माँ ने कहा—''तुम्हारा लड़का गंगा किनारे है। उसने मुझे बुलाया है। वहीं मैं जा रही हूँ।''

''मेरा लड़का? मेरा तो कोई लड़का नहीं है।''

''याद करो, अभी याद आ जायगा।''

अचानक भीखदास को एक पुरानी घटना याद आ गयी। एक बार वह एक गर्भवती महिला को लूट रहा था। भयवश उसका प्रसव वहीं हो गया। उस महिला ने कहा—''पिताजी, मैं तो अब भगवान् के घर जा रही हूँ। यह लड़का तुम्हारा है। अब इसकी सारी जिम्मेदारी तुम पर है। इसकी रक्षा करना।''

इतना कहने के बाद वह मर गयी। भीखदास उस लड़के को लाकर अपने यहाँ पालन-पोषण करता रहा। अचानक एक दिन न जाने कहाँ वह लापता हो गया। कहीं उस लड़के के वारे में तो यह बेटी नहीं कह रही है?

उसने घबराकर पूछा—''माँ, तुम कहाँ जाओगी, जल्द बताओ। मैं वहाँ तक तुम्हें पहुँचा दूँगा।''

दोनों साथ-साथ चलने लगे। काफी दूर पैदल चलने के बाद श्री माँ ने कहा—''पिताजी, मैं बहुत थक गयी हूँ। अब मैं यहाँ आराम करूँगी।''

भीखदास की पत्नी भी साथ थी। उसने कहा—''मेरी बेटी सड़क पर आराम नहीं करेगी। चलो, पास के गाँव में चलती हूँ।''

कुछ दूर आगे बढ़ने पर एक गाँव दिखाई दिया। वहाँ एक दुकान से बिछावन लाकर उस पर श्री माँ को लिटा दिया गया। भीखदास रात्रि-भोजन के लिए लाई-चना खरीद लाया। रातभर डाकू-दम्पति श्री माँ की पहरेदारी करते रहे।

दूसरे दिन श्री माँ ने कहा—''सौभाग्य से आप लोगों से भेंट हो गयी थी वरना न जाने क्या होता। मैं तो डर गयी थी। अब आप लोग मुझे अपने दामाद के यहाँ पहुँचा दें। वे आप लोगों को देखकर बड़े प्रसन्न होंगे। आपका वहाँ खूब अच्छी तरह स्वागत होगा।''

इसके बाद श्री माँ इन लोगों के साथ तारकेश्वर आयीं जहाँ गाँव के लोगों से मुलाकात हुई। श्री माँ ने उन लोगों से कहा—''ये लोग मेरे बाग्दी (छोटी जाति) माँ-बाप हैं। इनके कारण मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ।''

डाकू-पत्नी ने कहा—''मेरी बेटी भूखी है। रात को केवल लाई-चना खाकर सो गयी थी। इस वक्त हम भोजन बनाकर खिलायेंगे।''

भोजन खिलाने के बाद भीखदास संतुष्ट हो गया। श्री माँ ने कहा—''अब तुम घर चली जाओ माँ। कभी मौका मिले तो दक्षिणेश्वर स्थित काली-मंदिर में अपने दामाद के पास आ जाना।''

श्री माँ को बिदा करते समय दोनों फफककर रो पड़े। डाकू-पत्नी ने कहा—''एक रात में तुमने कितनी माया फैलायी बेटी?''

कुछ दिनों बाद भीखदास सपत्नीक आया। दामाद और लड़की के लिए तिल तथा लाई के लड्डू ले आये थे। शारदा ने बड़े आदर के साथ स्वागत किया। जलपान कराने के बाद शारदा ने कहा—''अच्छा माँ, अपनी इस बेटी से इतना स्नेह क्यों करने लगी हो?''

''अरे, यह क्या कह रही हो बेटी? उस दिन तुम्हें हम लोगों ने साक्षात् माँ के रूप में देखा था। हम लोग पापी हैं, इसलिए तुम अपने को छिपा रही हो। हम अपनी बेटी-जमाई को देखने आये हैं।''

माँ के सम्पर्क में आने के कारण आगे चलकर भीखदास ने डकैती बंद कर दी थी। एक दिन जिस लड़की को वे लूटने आये थे और अब उसी के भक्त बन गये।

❑ ❑ ❑

बातचीत के सिलसिले में एक दिन योगीन माता से श्री माँ ने कहा—''मेरे बारे में उनसे एक बात कह सकोगी?''

यहाँ एक बात बता देना आवश्यक है। नौबतखाने के जिस कमरे में माँ रहती थीं, उसकी ऊँचाई, लंबाई, चौड़ाई कम थी। उसीमें पूजा, भोजन बनाना, सारा समान

रखना और सोना पड़ता था। उनके शिष्य सोचा करते थे कि कैसे माँ इस छोटी कोठरी में न जाने कितने वर्ष गुजार चुकी हैं। सबसे बड़ी बात यह थी कि दिन के समय कोई उन्हें देख नहीं पाता था। वे इतनी लज्जाशील थीं कि हमेशा घूँघट काढ़कर रहती थीं। जब उनकी उम्र पचीस साल की हुई तब काशी से एक महिला आयीं जो उस समय इन्हें सर्वप्रथम परमहंसजी के सामने बिना घूँघट निकाले ले गयी थीं। इसके बाद से वे ठाकुर के सामने बिना घूँघट के आने लगीं।

दक्षिणेश्वर काली बाड़ी के खजांची साहब कहा करते थे—''वे हैं, इतना सुना है। कभी देखा नहीं।''

18 वर्ष से 33 वर्ष की उम्र तक श्री माँ परमहंस के साथ थीं। अगर बीच के आठ माह का समय छोड़ दिया जाय, जब दोनों एक साथ सोते थे, तो केवल भोजन कराने के समय श्री माँ परमहंस के पास आ पाती थीं। शेष समय नौबतखाने में रहती थीं। इतने पर भी श्री माँ का ध्यान सर्वदा परमहंसजी की ओर लगा रहता था। अगर वे अपने कमरे में धीरे से कोई बात कहते तो शारदामणि उसे सुन लेती थीं।

एक बार परमहंस ने स्वामी त्रिगुणातीतानन्द से कहा—''कलकत्ता आने का किराया जाकर माँ से ले लो।'' त्रिगुणातीतानन्द परमहंस के कमरे से श्री माँ के कमरे के पास आये तो देखा—बाहर बरामदे पर किराये की रकम रखी है।

इसी प्रकार एक बार परमहंस ने स्वामी विवेकानन्द से कहा कि जो कुछ खाना है, जाकर नौबतखाने में कह आओ। वह बना देगी। थोड़ी देर बाद स्वामीजी नौबतखाने में आये तो देखा कि श्री माँ उनके पसन्द का भोजन बना रही हैं।

इन्हीं उदाहरणों से यह समझा जा सकता है कि श्री माँ परमहंस के प्रति कितनी सजग रहती हैं।

बहरहाल दूसरे दिन योगीन माता परमहंसजी के पास आकर श्री माँ की इच्छा के बारे में कहने लगीं। सारी बातें सुनने के बाद परमहंसजी गंभीर हो गये। इस बारे में उन्हें कुछ न कहते देख योगीन माता सहमकर चुपचाप चली आयीं। उन्होंने सोचा कि श्री माँ को यह बात जाकर कह दूँ। नौबतखाने के पास आयीं तो देखा—दरवाजा बन्द है। धीरे से उन्होंने दरवाजे को खोला तो अद्‌भुत दृश्य देखा। श्री माँ समाधि में लीन थीं।

कुछ देर बाद जब पुनः योगीन माता आयीं तब इन्हें देखते ही श्री माँ ने पूछा—''ठाकुर से मेरे बारे में कहा था?''

योगीन माता ने इस प्रश्न का जवाब न देकर कहा—''तुम तो कहती रही कि मुझे समाधि या भाव चाहिए। अभी कुछ देर पहले क्या कर रही थीं?''

प्रत्यक्ष चोरी पकड़ जाने के कारण श्री माँ मुस्कराकर चुप रह गयीं।

बीच में योगीन माता कुछ दिनों तक श्री माँ के कमरे में एक साथ सोती रहीं। अक्सर गहरी रात को कोई बाँसुरी बजाता था। इस आवाज को सुनते ही भगवान्

को पाने के लिए श्री माँ का हृदय व्याकुल हो उठता था। कभी-कभी समाधि लग जाती थी।

परमहंस के एक भक्त बलराम बोस थे। एक बार उनके यहाँ ध्यान करते समय माँ समाधि में लीन हो गयीं। प्रकृतिस्थ होने के बाद कहने लगीं—"देखा कि न जाने कहाँ चली जा रही हूँ। वहाँ ठाकुर बैठे हैं। मुझे आदर के साथ ले जाकर किसीने ठाकुर की बगल में बैठा दिया। बड़ा आनन्द मिला। होश आने पर देखा—मेरा शरीर एक ओर पड़ा है। उस वक्त सोचने लगी कि कैसे उस गंदे शरीर में प्रवेश करूँ?"

एक बार नीलाम्बर बाबू के मकान में श्री माँ ध्यान लगाकर बैठीं। आपकी बगल में योगीन माता और गोपाल माता ध्यान कर रही थीं। सहसा न जाने क्यों श्री माँ चीख उठीं—"अरी योगीन, मेरा हाथ कहाँ गया, पैर कहाँ गया?"

योगीन माता तथा गोपाल माता ने गौर किया तो देखा कि शारदामणि उच्चस्तरीय समाधि में लीन हैं। स्थूल जगत् में नहीं हैं। दोनों उनके हाथ-पैर को खींचती हुई बोलीं—"यह तो हैं तुम्हारे हाथ-पैर।"

लक्ष्मीनारायण नामक एक मारवाड़ी दस हजार रुपये लेकर परमहंसजी के पास आया। उसका उद्देश्य यह था कि ठाकुर सर्वदा फटेहाल रहते हैं। इन रुपयों के जरिये अपनी स्थिति ठीक कर लें।

उसके प्रस्ताव को सुनकर परमहंस ने कहा—"यहाँ रुपये-पैसे की बात मत करो। अगर यही करना है तो आगे से यहाँ मत आना।"

यह बात सुनते ही सेठ सन्नाटे में आ गये। जीवन में अब तक जितने साधुओं को दान दिया है, सभी लोगों ने हाथ पसारकर लिया है और ठाकुर कह रहे हैं कि रुपये-पैसे की बात मत करो। उसने सोचा कि एक बार और अनुरोध करूँ तो शायद राजी हो जायेंगे। उसने पुनः निवेदन किया।

रामकृष्णजी ने कहा—"व्यर्थ की बात मुझे पसन्द नहीं। मुझे तुम्हारे रुपयों की जरूरत नहीं। अगर माँ को जरूरत हो तो उन्हें दे सकते हो।"

यह बात सुनकर सेठ के मन में आशा का संचार हुआ। वे श्री माँ के पास आकर अनुरोध करने लगे। श्री माँ ने कहा—"जब उन्होंने नहीं लिया तब मैं कैसे ले सकती हूँ? मेरा लेना जो होगा, वही उनका लेना होगा।"

सेठजी इस त्याग को देखकर चकित रह गये। जब यह समाचार परमहंसजी के पास गया तब उन्होंने कहा—"मैं जानता था कि वह नहीं लेगी, पर जरा आजमा रहा था।"

अक्सर श्री माँ की परीक्षा परमहंसजी लेते रहते थे। बलराम बोस की पत्नी बीमार थीं। वे श्री माँ का दर्शन करना चाहती थीं। परमहंस ने श्री माँ से कहा—"बलराम की पत्नी बीमार है। जाओ, एक बार देख आओ।"

शारदामणि ने संकोच से पूछा—"कैसे जाऊँ?"

परमहंसजी ने कहा—"उसकी पत्नी बीमार है, और तुम देखने नहीं जा सकती? जरूरत पड़ने पर पैदल जा सकती हो।"

ठाकुर का आदेश मानकर श्री माँ पैदल रवाना हुईं। लेकिन ठाकुर की माया को कौन जान पाता है। मंदिर के बाहर आते ही पालकी मिल गयी। पैदल नहीं जाना पड़ा।

माँ के स्पर्श से बलराम की पत्नी को शान्ति प्राप्त हुई। ठाकुर को यह बात मालूम हो गयी थी, इसीलिए उन्होंने भेजा था।

दूसरी ओर ठाकुर श्री माँ को साक्षात् कालीस्वरूप समझकर डरते थे। एक बार वे श्री माँ के शाही खर्च की आदत से नाराज होकर बोले—"इस तरह खर्च करोगी तो कैसे काम चलेगा?"

श्री माँ गंभीर होकर अपने कमरे की ओर चली गयी। मुँह से एक शब्द भी नहीं कहा। यह दृश्य देखकर ठाकुर व्याकुल होकर अपने भतीजे रामलाल से कहने लगे—"अरे रामलाल, देख तेरी काकी नाराज हो गयी है। उसे शान्त कर बेटा। अगर वह नाराज हो गयी तो मैं चौपट हो जाऊँगा।"

सन् 1885 ई० के प्रारंभ में परमहंसजी गले के कैंसर-रोग से पीड़ित हो गये। भोजन ही नहीं, लोगों से बातें करने में कष्ट होता था। हालत नाजुक देखकर भक्त लोग उन्हें श्यामापुकुर ले आये। इलाज से कोई फायदा नहीं हो रहा था। दिन-रात खाट पर पड़े रहते थे। फिर यहाँ से लोग परमहंसजी को काशीपुर ले गये।

एक दिन श्री माँ ने देखा कि ठाकुर अपने कमरे से तेजी से निकले और बाहर चले गये। ठाकुर के इस कार्य को देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। जो व्यक्ति अपने-आप करवट नहीं बदल सकता, उसमें इतनी शक्ति कैसे आ गयी। कहीं आँखों को धोखा तो नहीं हुआ? यह जानने के लिए ऊपर गयीं तो देखा—ठाकुर अपने कमरे में नहीं थे। चारों ओर तलाश करने पर भी दिखाई नहीं पड़े। एकाएक श्री माँ ने देखा कि जिस तेजी से वे बाहर गये थे, उसी तेजी से ऊपर जा रहे हैं। सीधे अपने कमरे में जाकर सो गये।

उस दिन श्री माँ चुप रहीं। दूसरे दिन पथ्य देते समय इस घटना के बारे में पूछा। परमहंसजी चौंककर बोले—"अच्छा, तो तुमने देख लिया था। बात यह रही कि लड़के गोल बनाकर खजूर का रस पीने जा रहे थे। मैं यहाँ से साफ देख रहा था कि उस पेड़ के नीचे एक भयंकर साँप है। अगर लड़कों से चूक हो जाती तो दो-चार मर जाते। यही वजह है कि लड़कों के जाने के पहले उसे भगा आया।"

ठाकुर की हालत दिन-प्रतिदिन खराब होती गयी। भक्त और शिष्य सभी चिंतित हो उठे। श्री माँ ने निश्चय किया कि वे तारकेश्वर भगवान् के मंदिर में जाकर सत्याग्रह (अनशन) करेंगी। तारकेश्वर मंदिर आकर वे अनशन करने लगीं।

दूसरे दिन रात को उन्हें लगा जैसे कुम्हार की बनायी हँड़ियों के अंबार में किसीने लाठी मारी और सारी हँड़िया फूट गयी। इस शब्द को सुनते ही उनका मोह दूर हो गया। वे वहाँ से वापस चली आयीं। यहाँ आकर एक दिन मंदिर में जाकर पति के जीवन-दान के लिए प्रार्थना करने लगीं। उन्होंने देखा कि काली माता की मूर्ति के गले में भी उसी प्रकार का घाव है।

इन दोनों घटनाओं को देखने के बाद से श्री माँ उदास रहने लगीं। किसी काम में उनका मन नहीं लगता था। आखिर एक दिन परमहंसजी चिर-समाधि में लीन हो गये। माँ की हृदयविदारक चीख सुनते ही भक्तों को मालूम हो गया कि आज वे सब अनाथ हो गये।

दूसरे दिन विधवा-वेश धारण करने के लिए शारदामणि जब हाथों के कंगनों को खोलने लगीं तभी सूक्ष्म शरीर में आकर परमहंसजी ने कहा—''कंगन क्यों उतार रही हो? मैं कहीं गया नहीं। इस कमरे से उस कमरे में चला गया हूँ।''

परमहंसजी की बातें मानकर श्री माँ ने विधवा-वेश धारण नहीं किया। रह-रहकर श्री माँ को परमहंसजी की एक बात याद आने लगी। उन्होंने कहा था—''मेरे शरीरान्त के पश्चात् तुम जल्द शरीर मत छोड़ना। आजकल लोग ईश्वर को भूलते जा रहे हैं। इन लोगों को तुम्हें यह बताना होगा कि साधन-भजन कैसे करना चाहिए। भगवान् की उपेक्षा मत करो। वे सर्वशक्तिमान् हैं। अभी तुम्हें अनेक कार्य करने हैं। तुमसे ही इन लोगों को शक्ति और भक्ति प्राप्त होगी।''

❑ ❑ ❑

परमहंसजी के शरीरान्त के पश्चात् श्री माँ का मन बेहद उचाट हो गया था। उन्होंने निश्चय किया कि कुछ दिनों के लिए तीर्थयात्रा कर आऊँ। इस परिवर्तन से मन को शान्ति मिलेगी। अपने साथ गोपाल की माँ और लक्ष्मी दीदी को लेकर काशी चली आयीं।

विश्वनाथ मंदिर में अचानक उन्हें भाव-समाधि हो गयी। उस समय ठाकुर परमहंस उन्हें सहारा देकर डेरे तक ले आये। काशी से वे वृन्दावन की ओर चल पड़ीं। गाड़ी में हाथ खिड़की से बाहर निकाले बैठी थीं। एकाएक ठाकुर सूक्ष्म रूप में प्रकट होकर बोले—''हाथ को भीतर कर लो। स्टेशनों पर उचक्के रहते हैं। पता नहीं, कब कौन सोने के जेवर छीन ले जायें।''

पति की आज्ञा मानकर उन्होंने हाथ को भीतर कर लिया। लेकिन उनका अशान्त हृदय शान्त नहीं हो रहा था। उनका अभाव बुरी तरह खल रहा था।

परमहंसजी इस मानसिक उथल-पुथल का अनुमान करने के बाद बोले—''चिन्ता मत करो। वृन्दावन में गौरी माँ आ रही हैं। वे तुम्हें सांत्वना देंगी, दिशा देंगी।'' परमहंसजी इस यात्रा में माँ के साथ बराबर चल रहे थे। श्री माँ के सिवा अन्य कोई इसे अनुभव नहीं कर पा रहा था।

वृन्दावन आने पर गौरी माँ से मुलाकात हुई। बातचीत के सिलसिले में गौरी माँ ने कहा—"जिसका पति कृष्ण है, वह तो चिर सधवा है। आप बेफिक्र होकर सारे अलंकार धारण कर सकती हैं।"

पुनः एक दिन परमहंसजी प्रकट होकर बोले—"तुम योगीन को दीक्षा दे देना।"

योगीन महाराज उन दिनों श्री माँ के प्रमुख सेवक थे। ठाकुर के इस आदेश को सुनकर श्री माँ संकोच में पड़ गयीं। उनकी आँखें भर आयीं।

ठाकुर प्रकट होकर बोले—"इतना रोती क्यों हो? मैं तो हर समय तुम्हारे साथ हूँ। तुम योगीन (स्वामी योगानन्द) को दीक्षा दे दो।"

आदेश देने के साथ ही परमहंसजी ने बीज मंत्र भी बता दिया। माँ से इतनी बातें कहने के बाद परमहंसजी ने योगीन को स्वप्न में आदेश दिया कि श्री माँ से दीक्षा ले लेना।

यहाँ एक बात बता देना आवश्यक है। स्वामी योगानन्दजी को सभी लोग 'योगीन' के नाम से पुकारते थे। योगीन माता परमहंसजी की महिला-भक्त का नाम है।

श्री माँ पति के इस आदेश की उपेक्षा नहीं कर सकीं। वे अन्य पुरुष के सामने कभी अपना घूँघट नहीं उठाती थीं। योगीन को दीक्षा देते समय इसमें व्यतिक्रम हुआ। पूजा आदि के बाद जीवन में प्रथम बार उन्हें घूँघट उठाकर दीक्षा देनी पड़ी।

वृन्दावन में निवास करते समय सहसा श्री माँ को समाधि लग गयी। कई मंत्र कान के समीप फूँके गये, पर उनकी समाधि भंग नहीं हुई। लोग परेशान हो उठे। खासकर योगीन माता अधिक बेचैन हो गयीं। वे तुरत जाकर योगानन्द स्वामी को पकड़ लाये। उन्होंने श्री माँ के कान में न जाने कौन-सा मंत्र सुनाया जिसे सुनते ही वे प्रकृतिस्थ होकर बोल उठीं—"खाऊँगा।"

ठीक परमहंसजी की तरह बोलीं। परमहंसजी की जब समाधि भंग होती थी तब वे भी इसी प्रकार जलपान माँगा करते थे।

श्री माँ से स्वामी योगानन्द ने जब समाधि के अनुभव के बारे में प्रश्न किया तब माँ ने बताया—"मेरे चारों ओर ठाकुर (परमहंसजी) ही ठाकुर दिखाई देते रहे। समझते देर नहीं लगी कि सभी जीवों में ठाकुर विद्यमान हैं।"

श्री माँ वृन्दावन से हरिद्वार, जयपुर, पुष्कर आदि तीर्थस्थानों को देखने के बाद कलकत्ता वापस आ गयीं। ठीक इन्हीं दिनों श्री माँ को ठाकुर की एक बात याद आ गयी। देह-त्याग के कुछ दिन पहले ठाकुर ने कहा था—"मेरे देह-त्याग के बाद कुछ दिनों के लिए तुम कामारपुकुर जाकर रहना। वहाँ जो कुछ खाने-पहनने को मिले, उसीसे संतोष करना और बराबर भगवान् को स्मरण करती रहना।"

ठाकुर के उक्त आदेश का पालन करने के लिए श्री माँ अपनी ससुराल कामारपुकुर चली आयीं। गाँव में सामाजिक नियमों का पालन सख्ती से होता है। खासकर महिलाओं के आचरण के प्रति समाजपति से लेकर हर वर्ग के पुरुष तीव्र दृष्टि से देखते हैं।

श्री माँ के आगमन के कुछ दिनों बाद उनकी पीठ पीछे तरह-तरह की चर्चाएँ होने लगीं। श्री माँ विधवा होकर किनारेदार साड़ी पहनती हैं! हाथ में कंगन पहनती हैं!! अरे, इनका सारा रहन-सहन तो सधवाओं की तरह है।

श्री माँ गाँव की कुलवधू ही नहीं, गाँव की बेटी भी हैं। उनकी नजरों से लोगों की आँखों की बातें छिपी नहीं रहीं। अक्सर उनकी चर्चाएँ सुनने में आती रहीं। लोगों का मुँह बन्द करने के लिए एक दिन वे अपने हाथों का कंगन उतारने लगीं।

ठीक इसी समय ठाकुर प्रकट हुए और उन्हें ऐसा करने से मना किया। हर क्षण मुसीबतों के वक्त ठाकुर को अपने निकट पाकर श्री माँ निहाल हो जाती थीं। ऐसे दुःख के समय उन्होंने देखा—ठाकुर उनकी ओर धीरे-धीरे बढ़ रहे हैं। उनके चरणों पर गंगा की लहरें कल्लोल कर रही हैं। उनके पीछे अनेक भक्त और शिष्य हैं। यह दृश्य देखकर श्री माँ ने पास के एक पौधे से कुछ फूल चुनकर उनके चरणों में अंजलि दी। उस दिन उनका सारा अंतर अनिर्वचनीय आनन्द से परिपूर्ण हो उठा। उन्हें विश्वास हो गया कि जिस व्यक्ति के चरणों से गंगा अठखेलियाँ करती हैं, वे स्वयं नारायण हैं। नारायण की पत्नी विधवा नहीं हो सकती।

इस अलौकिक दर्शन के बाद से वे बराबर लाल साड़ी और कंगन पहने रहती थीं। आगे कभी इस पोशाक में उन्होंने कोई परिवर्तन नहीं किया।

पति के आज्ञानुसार श्री माँ कामारपुकुर में रहने लगीं। साक्षात् भगवती को जीवन-यापन के लिए कितना कष्ट उठाना पड़ता था, इसकी कल्पना किसीको नहीं थी। वे स्वयं धान रोपतीं, फसल काटतीं, ओखली में कूटती थीं। घर के पासवाली जमीन में फरसे से गोड़कर तरकारी पैदा करतीं। यहाँ तक कि वे नमक तक खरीद नहीं पाती थीं। इनकी इस स्थिति का आभास उनकी माँ श्यामासुंदरी को भी ज्ञात नहीं हो सका जो कि यहाँ से तीन मील की दूरी पर रहती थीं। फटी धोती, तेल के अभाव में सिर के बाल जटा बन गयीं और शरीर मलेरिया से पीड़ित रोगी की तरह हो गया।

बहुत दिनों बाद श्री माँ की इस स्थिति का पता रामकृष्ण परमहंस के भक्तों को लगा। उनके कातर अनुनय के कारण माँ को पुनः कलकत्ता वापस आना पड़ा।

यह घटना सन् 1888 ई० की है। यहाँ आने पर श्री माँ में आमूल परिवर्तन हो गया। श्री माँ को लोग साधारण महिला मात्र समझते रहे। लेकिन श्री माँ जब बाहरी परिवेश को भूलकर अन्तर्मुखी होने लगीं तब उनकी दिव्य आभा से लोग चमत्कृत

हो उठे। महिमामयी, कल्याणकारी श्री माँ के दिव्य आनन को देखकर सभी भक्तों को विश्वास हो गया कि उनकी शारदा माँ विश्वजननी हैं। इनमें ईश्वरीय शक्ति का पूर्ण रूप से प्रादुर्भाव हो गया है। ठाकुर के अभाव में श्री माँ का साया मंगलकारी है। फलतः अनेक शोकसंतप्त नर-नारी श्री माँ के निकट आने लगे। दीक्षा लेने लगे।

दीक्षा के बारे में श्री माँ ने कहा था—''दीक्षा देते समय गुरु की शक्ति शिष्य में आ जाती है और गुरु को शिष्य का पाप लेना पड़ता है, इसीलिए उन्हें शिष्य का पाप भोगना पड़ता है। आजकल जो लोग आते हैं, वे इतना पाप-कार्य करते हैं कि उसका वर्णन करना कठिन है। फिर भी जब 'माँ' कहकर सामने आते हैं तब मैं अपने को रोक नहीं पाती। मैं यह जानते हुए कि यह योग्य पात्र नहीं है, फिर भी जो नहीं देना चाहिए, उसे भी दे डालती हूँ। इसलिए सभी से कहती हूँ कि मैं जितना जप करने को कहती हूँ, करते रहो।''

इसमें कोई सन्देह नहीं कि दीक्षार्थी के पापों के कारण उन्हें कष्ट सहना पड़ता था। अपवित्र मन से अगर कोई चरण-स्पर्श करता तो असह्य यंत्रण होती। बाद में गंगा-जल से पैर धोने पर आराम मिलता था।

एक बार एक व्यक्ति को देखते ही श्री माँ कमरे के भीतर जाकर सो गयीं। उधर वह व्यक्ति भी कम विकट नहीं था। कमरे में प्रवेश कर उसने जबरन चरण-स्पर्श किया। तुरंत ही माँ के सिर और पेट में दर्द होने लगा। कई बाप पैर धोने पर भी दर्द कम नहीं हुआ। अगर योगीन माता आसपास रहती तो यह घटना न होती। इसके बाद वे बोलीं—''लेकिन यह बात शरत् (स्वामी शारदानन्द) से मत कहना वरना वह किसीको मेरे पास नहीं आने देगा।''

कलकत्ता के उपद्रव से घबराकर श्री माँ ने निश्चय किया कि अब पुरी जाकर जगन्नाथ देव का दर्शन करना चाहिए। अपने साथ गोपाल माता और लक्ष्मी दीदी को लेकर वे पुरीधाम चली गयीं।

परमहंसजी कभी पुरीधाम नहीं आये थे। श्री माँ को यह बात मालूम थी। कलकत्ता से आते समय लोगों से छिपाकर ठाकुर का एक चित्र ले आयी थीं। मंदिर में जाकर वे आँखें बंद कर सामने ठाकुर का चित्र उठाकर बैठ गयीं।

यह दृश्य देखकर गोपालमाता ने पूछा—''यह क्या? विग्रह देखने के बदले आँखें क्यों मूँद लीं?''

श्री माँ ने कहा—''आगे उन्हें देखने दो। इसके बाद मैं देखूँगी।''

कुछ दिनों बाद वहाँ से वापस आकर बेलुड़ स्थित नीलांबर बाबू के मकान में रहने लगीं। एक दिन ध्यान करते समय श्री माँ ने देखा—परमहंस ठाकुर घाट की सीढ़ियों से उतरकर गंगा में समा गये और स्वामी विवेकानन्द अंजलि से गंगा-जल उठाकर उपस्थित लोगों पर छिड़क रहे हैं।

इस दृश्य को देखकर माँ ने अनुमान लगाया कि परमहंसजी विवेकानन्द से कोई महत्वपूर्ण कार्य कराना चाहते हैं। विदेश जाने से पूर्व विवेकानन्द ने श्री माँ के पास आकर यात्रा की अनुमति माँगी। माँ ने बड़े स्नेह से उन्हें आशीर्वाद दिया।

आगे चलकर स्वामीजी ने अपने एक भाषण में कहा था—"श्री माँ के आशीर्वाद से मैं एक ही छलांग में हनुमान्‌जी की तरह सागर पार कर गया था। माँ की कृपा मेरे ऊपर पिता की कृपा से सौगुनी अधिक थी।"

❑ ❑ ❑

बंगला-साहित्य के प्रसिद्ध नाट्यकार गिरीश घोष हैजे से पीड़ित हो गये। डॉक्टरों ने कहा—"बचने की आशा कम है।"

एक दिन गिरीश घोष ने देखा कि उनके सिरहाने एक स्नेहमयी रमणी खड़ी हैं। उक्त रमणी ने कहा—"लो, यह प्रसाद खाओ। प्रसाद खाते ही ठीक हो जाओगे।"

गिरीश बाबू जब स्वस्थ हो गये तब एक दिन बातचीत के सिलसिले में स्वामी निरंजनानन्द ने कहा—"आप माँ के पास क्यों नहीं जाते? माँ और ठाकुर अलग-अलग नहीं हैं। जिस प्रकार राधाकृष्ण को पृथक् सत्ता के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता, ठीक उसी प्रकार रामकृष्ण और शारदामणि को अलग नहीं समझा जाता। चलो, मेरे साथ।"

गिरीश बाबू उसके पूर्व जितनी बार श्री माँ के निकट आये थे, कभी आँख उठाकर उनके चेहरे को नहीं देखा था। इस बार ज्यों ही उनकी ओर निगाह उठी त्यों ही वे चौंक उठे। अरे, बीमारी के समय यही मूर्ति तो उन्हें प्रसाद खिला रही थी!

अपनी शंका दूर करने के लिए उन्होंने श्री माँ से यही प्रश्न किया। श्री माँ ने मधुर मुस्कान के साथ सिर हिलाते हुए स्वीकार किया कि वे ही प्रसाद देने गयी थीं। इतना सुनते ही गिरीश घोष श्री माँ के चरणों पर गिर पड़े।

श्री माँ ने कहा—"मैं तुम लोगों की वास्तविक माँ हूँ। गुरु-पत्नीवाली माँ नहीं।"

गिरीश घोष ने कहा—"माँ, मेरे यहाँ प्रतिवर्ष दुर्गा-पूजा होती है। इस बार पूजा में दर्शन देने की कृपा करें।"

माँ ने स्वीकार कर लिया।

ठीक पूजा के अवसर पर माँ अस्वस्थ हो गयीं। गिरीश घोष के यहाँ समाचार भेजा गया कि श्री माँ नहीं जा सकेंगी। यह समाचार सुनकर गिरीश घोष व्याकुल हो उठे। अपने घर में मृन्मयी मूर्ति के सामने 'माँ-माँ' करते हुए जोर-जोर से रोने लगे।

इधर आधी रात के समय श्री माँ चौंककर बिछावन पर उठकर बैठ गयीं। पास ही गोपाल माता सो रही थीं। उन्हें जगाकर बोलीं—"गिरीश मुझे बुला रहा है। मैं अभी वहाँ जाऊँगी। चल, जल्दी से तैयार हो जा।"

"इतनी रात को जाओगी ?"

"हाँ, देर मत कर।"

"तुम तो अभी ठीक से खड़ी भी नहीं हो पा रही हो, कैसे इतनी दूर जाओगी ?"

"मैं कुछ भी सुनना नहीं चाहती। मेरा लड़का वहाँ तड़प रहा है। चलो, वरना मैं अकेली चली जाऊँगी।"

इसके आगे गोपाल माता को कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। दोनों पैदल ही चल पड़े। गिरीश बाबू के घर के पास आकर श्री माँ ने कहा—"गिरीश, मैं आ गयी।"

इस आवाज को सुनते ही किसीने दरवाजा खोला। लहमेभर में पूरे घर में हलचल मच गयी—"माँ आ गयीं, साक्षात् जगदम्बा आ गयीं।" जो लोग सो गये थे, वे भी आकर माँ के चरणों पर पुष्पांजलि देने लगे।

श्री माँ मृन्मयी मूर्ति के पास आकर खड़ी हो गयीं। लोग फूल-बेलपत्ती की अंजलि देने लगे। देखते-देखते माँ समाधिस्थ हो गयीं।

❑ ❑ ❑

दक्षिण भारत की यात्रा करके श्री माँ कलकत्ता आ गयीं। एक दिन एक अंग्रेज महिला माँ के पास आयी। चेहरा देखने से जाहिर हो रहा था कि किसी संकट के कारण काफी परेशान है। उसे शायद यह मालूम था कि भारत में हिन्दू लोग ईसाइयों को अछूत समझते हैं, इसलिए वह माँ से दूर बैठी। यह दृश्य देखकर श्री माँ स्वयं उसके पास जाकर उसकी पीठ पर हाथ फेरती हुई कुशल-मंगल पूछने लगीं।

अंग्रेज महिला ने कहा—"मेरी बेटी सख्त बीमार है। डॉक्टरों ने जवाब दे दिया है। अब मैं आपकी कृपा पाने के लिए आपके निकट आयी हूँ। मेरा विश्वास है कि यदि आप आशीर्वाद देंगी तो मेरी बेटी स्वस्थ हो जायगी। आप साधारण महिला नहीं, यीशु की माता मेरी हैं।"

अंग्रेज महिला की व्याकुलता देखकर श्री माँ की आँखें भर आयीं। उसे सांत्वना देती हुई श्री माँ ने कहा—"चिंता मत करो। तुम्हारी बेटी ठीक हो जायेगी।"

गोपाल माता से एक फूल मँगवाकर श्री माँ कुछ देर तक जप करती रहीं। इसके बाद उक्त फूल अंग्रेज महिला को देकर श्री माँ ने पुनः उसके मस्तक को स्पर्श किया। वह महिला चली गयी।

कई दिनों बाद उक्त ब्रिटिश महिला का पत्र आया कि माँ के आशीर्वाद से उनकी लड़की पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गयी है। आज वे लोग सपरिवार स्वदेश जा रहे हैं। यह समाचार सुनकर माँ का हृदय प्रसन्न हो गया।

श्री माँ छुआछूत को नहीं मानती थीं। सभी के साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार करती थीं। एक बार जयरामबाटी में बननेवाले भवन में अमजद नामक एक मुसलमान युवक मजदूर के रूप में कार्य कर रहा था। सभी लोग आँगन में भोजन कर रहे थे। छोटे भाई की पुत्री नलिनी भोजन परोस रही थी। कहीं स्पर्श न हो जाय, इसलिए वह बड़ी सावधानी से परिवेषण कर रही थी। यह दृश्य देखकर माँ से रहा नहीं गया। भले ही मजदूर है तो क्या? परिवेषण में अनादर होते देख वह स्वयं परिवेषण करने लगीं।

सभी लोग जब भोजन करके चले गये तब अपने हाथ से जूठन उठाकर साफ करने लगीं। यह दृश्य देखकर नलिनी चीख उठी—"बुआजी, तुम्हारी जाति भ्रष्ट हो गयी।"

श्री माँ ने कहा—"क्यों? जैसे शरत् मेरा लड़का है, उसी प्रकार अमजद भी मेरा बेटा है।"

बुआ का जवाब सुनकर नलिनी चुप हो गयी।

श्री माँ सभी शिष्यों को समान रूप से प्यार करती थीं। एक बार परमहंसजी के एक गृहस्थ भक्त ने सोचा कि माँ शारदानन्दजी को अधिक चाहती हैं। बात यह है कि श्री माँ शारदानन्द को खिलाते समय जो सामग्री उन्हें देती थीं, वह सामग्री भक्तों को नहीं देती थीं।

भक्त के मन में जब यह बात उत्पन्न हुई तब श्री माँ समझ गयी। उसी दिन रात को भोजन के समय उस भक्त की थाली में सभी सामग्री परोसी गयी जो शारदानन्द को परोसी गयी थी। दूसरे दिन भक्त की हालत नाजुक हो गयी। पेट के दर्द से वह कराहने लगा। तभी उसने अनुभव किया कि श्री माँ भक्तों की आदत के अनुसार भोजन परोसती हैं। किसीके साथ पक्षपात नहीं करतीं। जो लोग जयरामबाटी गये हैं, उन्हें इसका अनुभव है। यही वजह है कि श्री माँ के किसी भी कार्य के प्रति कोई बाधा नहीं डालता।

श्री माँ नित्य परमहंस के चित्र की पूजा करती थीं और प्रत्यक्ष दर्शन करती थीं। उनके द्वारा समर्पित नैवेद्य आदि स्वयं ठाकुर ग्रहण करते थे। जिस दिन वे ग्रहण नहीं करते थे, उस दिन माँ अनाहार रह जाती थीं। कहने का आशय यह है कि श्री माँ के साथ ठाकुर का नित्य सम्पर्क होता था। ठीक इसी प्रकार मातृकुल के प्रचलित अभ्यास के अनुसार सभी को भोजन कराकर तब वे खाती थीं। इस परम्परा के कारण उन्हें अक्सर बेवक्त भोजन करना पड़ता था। श्री श्री माँ के इस विश्वजननी रूप को देखकर लोग चकित रह जाते थे। इसके अलावा उनकी सरलता, मन की उदारता और स्नेह देखकर सभी उन्हें मूर्त्तिवती-माधुरी समझते थे। श्री माँ के इस रूप की तुलना नहीं की जा सकती।

❑ ❑ ❑

एक बार दुर्गा-पूजा के अवसर पर अष्टमी तिथि के दिन श्री माँ की पूजा आगत महिलाएँ नूतन वस्त्र देकर कर रही थीं। इसी बीच एक साधारण लड़की आयी। श्री माँ को दिये जानेवाले उपहारों को देखकर उसका मन कुंठाग्रस्त हो गया। सभी लोग कीमती साड़ियाँ और चादर दे रहे थे। ऐसी हालत में वह अपनी साधारण साड़ी कैसे दे। बाद में अपनी साड़ी देकर वह चटपट दूर जा खड़ी हुई।

अन्तर्यामी श्री माँ उसके मन की व्यथा को समझ गयीं। एकाएक उसकी दी हुई साड़ी उठाकर श्री माँ ने कहा—"वाह! इसकी किनारी तो बहुत सुंदर है। इसे उठाकर अलग रखो। आज महाष्टमी के दिन मैं इसीको पहनूँगी।"

श्री माँ के इन वचनों को सुनकर वह गद्‌गद हो उठी। आँखों से आदर के आँसू निकलने लगे। उसकी समस्त हीन भावना दूर हो गयी।

इसी प्रकार एक बार एक दंडी स्वामी श्री माँ का दर्शन करने आये। सप्तशती के कुछ अंश सुनाने के बाद उन्होंने श्री माँ से आशीर्वाद की माँग की।

श्री माँ ने अपने एक भक्त से कहा कि स्वामीजी को कुछ दे दो। भक्त को खोजने पर तीन आम मिले। आमों को सिर से लगाकर स्वामीजी चले गये।

उनके जाने के बाद ही अचानक श्री माँ ने भक्त को बुलाकर कहा—"अरे भाई, देखो और आम होंगे।"

भक्त के खोजने पर एक आम और मिला। श्री माँ ने कहा—"जाओ, दौड़कर संन्यासी को दे आओ।"

भक्त दौड़ता हुआ गया। कुछ दूर जाने पर संन्यासी से मुलाकात हुई तो उन्हें आम देते हुए कहा—"माँ ने एक और आम आपको दिया है।"

इस आम को पाकर संन्यासी महोदय लबे सड़क नाचने लगे। उन्होंने कहा—"माँ ने कितनी कृपा की। पहले तीन फलों का मतलब था—धर्म, अर्थ और काम। अब चौथे आम से मुझे मोक्ष भी मिल गया। माँ की यह असीम कृपा है।"

श्री माँ को संतान नहीं हो रहा है देखकर एक बार श्यामासुंदरी ने खेद प्रकट करते हुए कहा था—"मेरी बेटी संतानों की माँ नहीं बन सकी।"

परमहंसजी ने मुस्कराते हुए कहा—"माँ, तुम इसके लिए चिंता मत करो। तुम्हारी लड़की को इतने संतान होंगे कि वह माँ-माँ की पुकार से त्रस्त हो उठेगी।"

आगे चलकर श्री माँ की यही स्थिति हुई। ठाकुर के सभी शिष्य सगी माँ की तरह सम्मान करते थे। स्वामी विवेकानन्द जब विदेश से वापस आये तब उनके मन में यह भावना उत्पन्न हुई कि विदेशों में रहते समय कहीं मेरे मन में पाप प्रवेश कर गया हो तो मेरा शरीर अपवित्र हो गया होगा। इस डर से श्री माँ के निकट जाने के पूर्व वे गंगा-जल पीकर गये। यह श्री माँ के ही आशीर्वाद का फल था कि वे कई बार विदेशों में जाकर भारतीय धर्म-दर्शन का डंका बजाने में सफल हुए थे।

ठाकुर के मानस-पुत्र श्री राखाल महाराज सचराचर श्री माँ के सामने नहीं आते थे। जब कभी आते थे तब पसीने-पसीने हो जाते थे। उनके ओंठ काँपने लगते थे और भावस्थ हो जाते थे। स्वामी प्रेमानन्द तो शिशु बन जाया करते थे।

अपने इन बच्चों के प्रति श्री माँ का स्नेह असीम था। योगीन के निधन के बाद कहने लगीं—"योगीन की तरह मुझे कोई भक्ति नहीं करता था। अगर उसे कहीं से आठ आने पैसे मिलते तो उसे उठाकर रख देता था। कहता—'माँ जब तीर्थयात्रा करने जायेंगी तब वहाँ खर्च करेंगी'।"

शारदानन्द से भी असीम स्नेह करती थीं। उनके बारे में कहतीं—"जब तक शारदा है, मुझे कोई चिंता नहीं है। उसके अलावा मेरी जिम्मेदारी लेनेवाला दूसरा कोई दिखाई नहीं दे रहा।" वास्तव में शारदानन्द महाराज इस प्रकृति के थे कि मठ के कुत्ते-बिल्ली तक उनसे प्यार करते थे। रामकृष्णानन्द, अद्‌भुतानन्द, शिवानन्द, तुरीयानन्द आदि को माँ समभाव से स्नेह देती थीं।

श्री माँ के परिवार में दो व्यक्तियों के प्रति माँ का स्नेह अधिक था। सबसे छोटा भाई अभयाचरण डॉक्टरी पढ़ रहा था। सन् 1899 ई० में अपनी पत्नी सुरबाला को छोड़कर वह परलोकवासी हो गया। उस समय सुरबाला गर्भवती थी। सन् 1900 ई० में उसे एक लड़की पैदा हुई। सुरबाला पहले से ही पागल थी, इसलिए नवजात शिशु की सारी जिम्मेदारी माँ को लेनी पड़ी। इस कन्या का नाम राधारानी रखा गया। राधू भी श्री माँ को अपनी माँ समझने लगी। इस लड़की के प्रति श्री माँ की अत्यधिक ममता देखकर लोग चकित रह जाते थे। ठाकुर के सभी शिष्यों ने अनुमान लगाया कि इस शिशु के कारण माँ अपना नश्वर शरीर त्याग नहीं रही हैं। इसीमें वे लीन हैं।

शिष्यों के संदेह को दूर करने के लिए श्री माँ ने कहा—"ठाकुर के शरीर त्यागने के बाद मेरे मन में वितृष्णा उत्पन्न हो गयी। ठाकुर से कहा करती थी कि अब जीवित रहने से क्या फायदा? अचानक एक दिन देखा कि एक छोटी लड़की ताँत की साड़ी पहने सामने घूम रही है। ठाकुर ने कहा—'इस लड़की के सहारे जीवित रहो। तुम्हारे पास अनेक संतान आयेंगे।' अचानक एक दिन देखा कि राधू घुटनों के बल मेरी ओर आ रही है। इसकी माँ तो पागल हो गयी है। कौन इसे देखेगा? इसे गोद में लेते ही ठाकुर ने कहा—'जिस लड़की को तुमने देखा था, यह वही लड़की है। यह योगमाया है।' उसी दिन से इसे लेकर जी रही हूँ।"

पगली भाभी की लड़की को लेकर माँ काफी परेशान रहीं। उसके समस्त अत्याचारों को धैर्य के साथ सहन करती रहीं। अक्सर पगली भाभी गाली देती, मारने उठती, कपड़े नोचती और विभिन्न प्रकार के उपद्रव करती थी। श्री माँ सब कुछ चुपचाप सहन करती रहीं। राधू में भी पागलपन का किंचित् असर था। वह भी रह-रहकर दुर्व्यवहार किया करती थी। इस प्रकार श्री माँ 19 वर्ष तक कष्ट सहती रहीं।

सन् 1919 ई० के दिसम्बर माह में श्री माँ जयरामबाटी जाकर अस्वस्थ हो गयीं। शिष्यों को जब यह बात मालूम हुई तब वे उन्हें कलकत्ता ले आये। यह 27 फरवरी, सन् 1920 की घटना है।

यहाँ प्रसिद्ध डॉक्टरों का इलाज चलने लगा। यहाँ आकर भी वे लोगों का ख्याल रखती रहीं। अचानक योगीन माता को संदेह हुआ कि श्री माँ को अवतार तथा जगत्जननी कहा जाता है, पर वे तो गृहस्थ महिलाओं की तरह सारा कामकाज करती हैं। यह विचार आते ही वे माँ से जरा पृथक् हो गयीं।

एक दिन योगीन माता गंगा-स्नान के लिए घाट पर खड़ी थीं तभी परमहंसजी ने प्रकट होकर उँगली से एक ओर निर्देश किया जहाँ एक शव बहता हुआ जा रहा था। परमहंसजी ने कहा—"गंगा में इस तरह की न जाने कितनी गंदगियाँ बहती हैं तो क्या गंगा अपवित्र हो गयी है?"

धीरे-धीरे श्री माँ की हालत खराब होती गयी। इधर लोगों ने एक बात की ओर ध्यान दिया तो आश्चर्य हुआ। अब माँ राधू की खोज-खबर नहीं लेतीं और न उसे पास बुलाती हैं। एक दिन अपनी परिचारिका को बुलाकर उन्होंने कहा—"मेरे कमरे से ठाकुर का चित्र हटा दो। दूसरे कमरे में रख दो।"

यह बात सुनकर सभी शिष्य चौंक उठे। एकाएक राधू को देखकर श्री माँ ने कहा—"तू जयरामबाटी चली जा।"

राधू को रोते देख माँ ने रूढ़ स्वर में कहा—"मैं कहती हूँ, चली जा। यहाँ अब तेरी जरूरत नहीं है।"

शरत् महाराज को बुलाकर श्री माँ ने कहा—"इन लोगों को गाँव भेज दो। मैंने सभी लोगों पर से अपने मन को उठा लिया है।"

योगीन माता रोने लगीं। बोलीं—"माँ, ऐसा मत कहो। हम लोगों का क्या होगा?"

श्री माँ ने कहा—"अगर शांति पाना चाहती हो तो दूसरों का दोष मत देखना। ठाकुर सभी का मंगल करेंगे।"

बाद में शरत् महाराज (शारदानन्द) की ओर देखती हुई बोलीं—"योगीन, गोपाल और सभी रह गये। इनका ख्याल रखना। मैं जा रही हूँ।"

20 जुलाई, 1920 ई० के दिन रात डेढ़ बजे श्री माँ ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया।

●
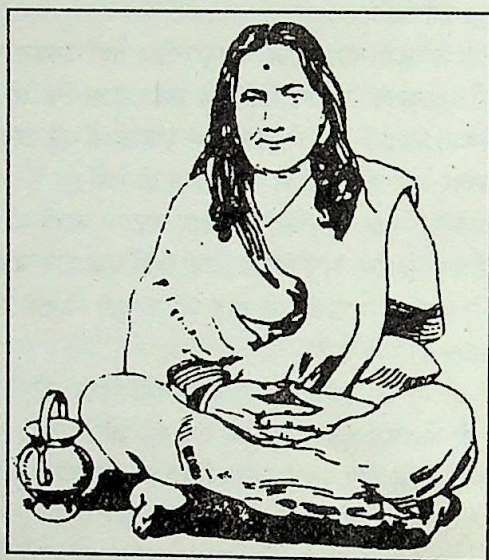
गौरी माँ

परमहंस रामकृष्ण देव के अनन्य भक्त श्री बलराम बसु के यहाँ गौरी माँ अतिथि के रूप में ठहरी थीं। नित्य वे शालग्राम (जिसे वे दामोदर कहती थीं) की पूजा करती थीं। उस दिन शालग्राम को स्नान कराने के बाद जब वे उसे सिंहासन पर रखने गयीं तो देखा—वहाँ जीवित मनुष्य के दो चरण हैं। दोनों पैरों के अलावा शरीर का और कोई भाग दिखाई नहीं दे रहा है। पहले तो उन्होंने आँखों का भ्रम समझा, पर सत्य को कब तक भ्रम समझतीं? बार-बार दो चरण उन्हें दिखाई देने लगे।

गौरी माँ के जीवन में कई चमत्कार हो चुके हैं। उन सभी चमत्कारों को वे प्रभु की लीला समझती रहीं, पर यह एक ऐसा चमत्कार था जिसे सामान्य व्यक्ति विश्वास नहीं कर पाता। आखिर यह प्रभु की कैसी लीला है? देखते-देखते उनका सारा शरीर रोमांचित हो उठा और उनके आराध्यदेव दामोदर हाथ से नीचे गिर पड़े। तुरत उसे उठाकर उन्होंने सिर से लगाया और पुनः सिंहासन पर रखने गयीं तो देखा—वही दोनों चरण मौजूद हैं।

बलराम बसु का पूरा परिवार गौरी माँ के प्रति अत्यन्त श्रद्धा ही नहीं करता था, बल्कि हर वक्त उनका ध्यान रखता था। आज पूजा-घर से उन्हें निकलने में देर होते देख लोग चिन्तित हो उठे। दरवाजे के छेद से देखने पर लोगों ने देखा—गौरी

माँ जमीन पर बेहोश पड़ी हुई हैं और उनकी आँखों से आँसू बह रहे हैं। यह समाचार सुनकर बसु महाशय की पत्नी घबरायी हुई आयीं। काफी पुकारने पर जब कोई जवाब नहीं मिला तो वे अपने पति को बुला लायीं।

यह दृश्य देखकर बलराम बसु ने कहा—"घबराने की बात नहीं है। यह भावावेश है।"

लगभग तीन-चार घण्टे बाद उनकी चेतना वापस आयी। लोगों ने उनसे तरह-तरह के प्रश्न किये, वे किसी बात का जवाब नहीं दे सकीं। चुपचाप विह्वल दृष्टि से लोगों को देखती रहीं। बाद में इशारे से अपने हृदय को दिखाती हुई यह जताने लगीं कि कोई इसे अपनी ओर खींच रहा है।

इसका क्या तात्पर्य है, किसीकी समझ में नहीं आया। दिन बीता, रात बीती, उनकी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। तन्द्रा में गौरी माँ को अस्पष्ट स्वर में किसी अज्ञात व्यक्ति की वाणी सुनाई दी—"जब तक मैं नहीं खींचूँगा तब तक तू नहीं आयेगी?"

गौरी माँ ने प्रश्न किया—"आखिर आप हैं कौन? आपकी आवाज परिचित-सी मालूम पड़ रही है।"

उस ओर से जवाब आया—"हाँ, ठीक समझा है। जब तू मेरे पास आयेगी तब पहचान लेगी। देर मत कर, जल्द आ।"

इसके बाद गौरी माँ की नींद उचट गयी। जागने पर उन्होंने महसूस किया कि कमरे में वह आवाज बराबर प्रतिध्वनित हो रही है—'जल्द आ, जल्द आ।' इस आवाज ने उन्हें बेचैन कर दिया। अपने को संयत नहीं कर पा रही थीं। वह आह्वान उन्हें चुम्बक की तरह तेजी से अपनी ओर आकर्षित करने लगा। उन्हें लगा, जैसे वह अगर तुरत नहीं चल देगी तो वह आवाज उन्हें जबरन खींच ले जायगी।

वे अपने कमरे से बाहर निकलीं। अभी भोर होने में देर थी। अर्द्धचेतनावस्था में वे सदर दरवाजे के पास आकर खड़ी हुईं और साँकल को पकड़कर खींचने लगीं।

दरवाजे पर खड़े दरबान को आश्चर्य हुआ। उसे इस बात का सख्त आदेश था कि मकान-मालिक के आदेश के बिना दरवाजा सुबह न खोला जाय। उसने बार-बार गौरी माँ से प्रश्न किया, पर उनकी ओर से कोई उत्तर नहीं मिला। यह देखकर वह दौड़ा हुआ भीतर गया और इस बात की सूचना बलराम बसु को दी। वे तुरत नीचे आये।

गौरी माँ के पास आकर उन्होंने पूछा—"दीदी, कहीं जाओगी क्या?"

गौरी माँ निरुत्तर रहीं।

गौरी माँ का हावभाव देखकर बलराम बसु को संदेह हुआ। भगवत्-कृपा से वे पूछ बैठे—"क्या दक्षिणेश्वर के महापुरुष के पास जाओगी?"

इस प्रश्न को सुनते ही वे एकटक बलराम बसु की ओर देखने लगीं। बलराम बसु समझ गये कि परमहंस ठाकुर इन्हें आकर्षित कर रहे हैं। अब विलम्ब करना उचित नहीं है। बसु-परिवार के सभी सदस्य परमहंसजी के भक्त थे। केवल यही नहीं, इनके आसपास रहनेवाले अधिकांश लोग ठाकुर के भक्त थे।

सभी के यहाँ सूचना भेजी गयी। पड़ोस के भक्तों को लेकर बलराम बसु दक्षिणेश्वर की ओर रवाना हुए। गाड़ी में बैठी गौरी माँ निर्वाक् होकर बाहर का दृश्य देखती रहीं। धीरे-धीरे सबेरा होने लगा।

जिस समय गाड़ी दक्षिणेश्वर स्थित मंदिर में पहुँची, उस समय परमहंसजी के कमरे से उनके गाने की आवाज आ रही थी। गौरी माँ को यहाँ भी यही अनुभव हुआ जैसे कोई उन्हें अपनी ओर खींच रहा है। कमरे के भीतर प्रवेश करते ही चमत्कार हुआ। सारा कष्ट दूर हो गया। मन में अपूर्व शान्ति छा गयी।

साथ आये सभी लोग सामने बैठे महापुरुष को प्रणाम कर एक ओर खड़े हो गये। गौरी माँ की पारी आने पर वे प्रणाम करने गयीं। प्रणाम करते समय देखा—यह तो वही युगल-चरण हैं जिन्हें वह अपने दामोदर के सिंहासन पर कल बार-बार देखती रहीं। वह चौंककर महापुरुष के चेहरे की ओर देखने लगीं—कौन है यह महापुरुष? लगता है, इन्हें कहीं देखा है।

परमहंसजी ने मुस्कराते हुए बलराम बसु से पूछा—''यह कौन है?''

''मेरी बहन।''

''यानी का-य-स्थ है?''

बलराम बसु ने कहा—''जी नहीं। यह ब्राह्मण-कन्या है। बचपन में आप मेरे पिताजी को 'पिताजी' कहकर पुकारती थी, इसी रिश्ते में इन्हें मैं दीदी कहता हूँ।''

परमहंसजी ने कहा—''तभी तो कहूँ कि यह तो यहाँ की सम्पत्ति है। पूर्व-परिचित है।''

बलराम बसु चकित रह गये। दीदी पूर्व-परिचित है? आखिर कब, कैसे?

इधर गौरी माँ को लहमेभर में पूर्व स्मृतियाँ धीरे-धीरे याद आने लगीं। कल इसी महापुरुष के दोनों चरण 'जल्द आ—जल्द आ' कहते रहे।

जब वह नन्हीं-सी थी तब उस समय भी इसी महापुरुष ने आशीर्वाद देते हुए कहा था—''कृष्ण के प्रति तुम्हारी अचल भक्ति हो।''

यह उन दिनों की बात है जब गौरी माँ का वास्तविक नाम था—मृड़ानी (दुर्गा)। एक दिन जब वह अपनी सहेलियों के साथ बातें कर रही थी तब इस महापुरुष को देखा था। इनकी सौम्य आकृति और शरीर से निकलती हुई ज्योति को देखकर आकृष्ट हुई थी। उस दिन इन्हें तब तक देखती रही जब तक वे आँखों से ओझल नहीं हो गये।

बचपन से ही मृड़ानी की अद्‌भुत प्रकृति थी। दिमाग की तेज थी। सहेलियों की भाँति गुड्डे-गुड़िया के खेल इन्हें पसन्द नहीं आते थे। वाचाल लड़कियों से सम्पर्क नहीं रखती थी। जिद्दी और कर्मठ होने के कारण अपनी रुचि के अनुसार काम करती थी। पूजा-पाठ तथा ध्यान में मग्न रहती थी। इस घटना के कुछ दिनों बाद उसे पता चला कि पड़ोस के केला-बाग में कोई महात्मा रहते हैं। मृड़ानी उन्हें देखने के लिए चुपचाप एक दिन अकेले घर से रवाना हो गयी। पूछताछ करने पर उसे मालूम हुआ कि उधर एक मकान में एक महात्मा रहते हैं। वह चुपचाप उनके कमरे के पास आकर खड़ी हो गयी। दरवाजा बन्द था। धीरे से धक्का देते ही खुल गया। उसने आश्चर्य के साथ देखा—यह तो वही व्यक्ति हैं जिन्हें कुछ दिनों पहले अपने घर के पास देख चुकी है। वे आँखें बन्द किये बैठे थे। चरण-स्पर्श करते ही महात्मा ने आँखें खोलीं। बोले—"तू आ गयी। मैं तेरी प्रतीक्षा कर रहा था।"

इसके बाद उसे लेकर महात्माजी पड़ोस के एक मकान में ले गये और मकान-मालिक से कहा कि इसे अपने यहाँ रखो। कल इसकी व्यवस्था होगी। दूसरे दिन उक्त सज्जन के साथ वह गंगा नहाने गयी और फिर सीधे महात्माजी के पास आ गयी। महात्माजी ने उसे दीक्षा देकर जप-मंत्र बताया। वह वहीं बैठकर जप करते-करते आत्मविभोर हो उठी।

इधर घर के लोग परेशान हो उठे। कल से लड़की गायब है, आखिर कहाँ गयी? रिश्तेदारों के यहाँ खोजने के बाद चारों ओर खोज होने लगी। प्रत्यक्षदर्शियों से पता लगाते हुए लोग महात्माजी के पास आये। परमहंसजी सारी स्थिति समझ गये थे। उन्होंने गौरी माँ के परिवारवालों से कहा—"इसे डाँटना-मारना नहीं। पीली चिड़िया पिंजरे में आबद्ध नहीं रहती।"

रामकृष्णजी ने गौरी माँ के भविष्य की ओर इंगित किया, पर लोग इतने उतावले थे कि उन्होंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। अगर वे इस रहस्य को समझ जाते तो शायद सावधानी से काम लेते।

गौरी माँ को समझते देर नहीं लगी कि सामने बैठे महात्मा ही उसके बचपन के दीक्षा-गुरु परमहंस रामकृष्ण देव हैं। इन्हीं के चरण मेरे दामोदर के सिंहासन पर दिखाई दिये थे। इन्हींके आकर्षण ने यहाँ बुलाया है।

❑ ❑ ❑

हबड़ा के शिवपुर नामक कसबे में पार्वतीचरण चटर्जी नामक एक सज्जन सपरिवार रहते थे। वे खिदिरपुर स्थित एक आफिस में काम करते थे। निष्ठावान् ब्राह्मण तथा धार्मिक प्रकृति के थे। संतान प्राप्ति के लिए उन्होंने कुलीन प्रथा के अनुसार एक के बाद एक करके चार विवाह किये। तीन पत्नियाँ संतान-हीन रहीं। केवल गिरिबाला कई पुत्रों की जननी बनी। प्रथम पुत्र जन्म लेने के कुछ दिनों बाद

मृत्यु का शिकार हो गया। उसके बाद एक पुत्र और हुआ। संतान होने के कारण ससुराल में गिरिबाला का महत्व अन्य बहुओं की अपेक्षा अधिक बढ़ गया। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि गिरिबाला असामान्य महिला थीं। वे कवयित्री थीं। बंगाल में प्रचलित अनेक श्यामा-संगीत इन्हींकी देन हैं। स्वयं परमहंसजी भी कभी-कभी श्यामा-संगीत गुन-गुनाया करते थे।

एक दिन रात को गिरिबाला ने एक अद्‌भुत स्वप्न देखा। चारों ओर घनघोर अँधेरा है और वह उस अँधेरे में चुपचाप अकेली खड़ी हैं। ठीक इसी समय अँधेरे में प्रकाश का उदय हुआ। वह ज्योति क्रमशः गिरिबाला की ओर बढ़ने लगी। पास आकर वह दिव्य ज्योति महामाया के रूप में प्रकट हुई। उन्होंने मुस्कराते हुए गिरिबाला के हाथ में एक संतान को बढ़ाया। गिरिबाला ने अपनी बाँहें फैलाकर उस शिशु को लेकर छाती से लगा लिया। तभी वह ज्योति लुप्त हो गयी। इस घटना के बाद परिवार में एक कन्या ने जन्म लिया जिसका नाम मृड़ानी रखा गया।

मान्यता है कि माँ-बाप के स्वभाव और संस्कारों का प्रभाव संतान पर पड़ता है। मृड़ानी के माता-पिता तथा परिवार के लोग बड़े सात्विक, सदाचारी और निष्ठावान् रहे। इसका प्रभाव मृड़ानी पर पड़ा। इसके अलावा संतान अपने साथ पूर्वजन्म के कुछ संस्कारों को लेकर आती है जिसके लक्षण बचपन से ही दिखाई देने लगते हैं।

मृड़ानी मांस-मछली से नफरत करती थी। हमउम्र की लड़कियाँ जहाँ गुड़ियों को लेकर खेलती थीं, वहीं वह मिट्टी के शालग्राम बनाकर ध्यान-मग्न हो जाती थी। एक बार अपने बड़े भाई के साथ नौका-विहार कर रही थी। अचानक बोल उठी—"दादा, औरतें अपने शरीर पर जेवरों का बोझ क्यों ढोती हैं?"

दादा के साथ-साथ सभी चकित दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे। किसीके कुछ कहने के पहले ही वह अपने हाथ से सोने का कंगन निकालकर चबाने लगी। कोई स्वाद न पाकर सभी के सामने उसे गंगा नदीं में फेंक दिया।

परिवार में चण्डीचरण नामक एक सज्जन रहते थे जिन्हें सभी मामा कहते थे। उनका ज्योतिष पर अधिकार था। घर के बच्चों को बुलाकर कभी-कभी अपनी भ्रमण-कहानियाँ सुनाया करते थे। भारत के कितने तीर्थों को वे देख चुके हैं, कहाँ कौन से देवता या देवी प्रसिद्ध है, कहाँ का स्थान दुर्गम है या मनोरम है। नदी, पहाड़, झरना आदि के बारे में विस्तार से बताया करते थे। इसी तरह बातचीत के सिलसिले में एक दिन मृड़ानी की हस्तरेखा देखकर वे चौंक उठे। बोले—"इस लड़की के विवाह में बाधा है। यह संन्यासिनी बनेगी।"

मामा की भविष्यवाणी पर किसीको विश्वास नहीं हुआ। लोगों ने इसे मजाक समझा और कुछ लोगों को यह बात पसन्द नहीं आयी। लेकिन भवितव्य होकर ही

रहता है। मृड़ानी की नानी और माँ दोनों ही काली माता की उपासिका थीं। उनका प्रभाव बेटी पर पड़ना स्वाभाविक था। इसके अलावा बंगाल शक्ति के उपासकों की भूमि है। वह काली के अलावा कृष्ण और गौरांग प्रभु की भक्त थी।

ठीक इन्हीं दिनों एक घटना हो गयी। एक ब्रजवासी महिला इनके यहाँ आकर ठहर गयी। उनके आने का कारण पूछने पर वह कहतीं—''एक खास काम से आयी हूँ।'' दिन-रात पूजा-पाठ, ध्यान-जप किया करती थीं। उनके पास पत्थर का एक शालग्राम था जिसे वे प्राणों से अधिक प्यार करती थीं।

एक दिन वे मृड़ानी को एकान्त कमरे में ले गयीं। गौर से कुछ देर उसकी ओर देखती हुई आँसू बहाने लगीं। बालिका मृड़ानी की समझ में कुछ नहीं आया। वह निर्वाक् हो देखती रही। महिला ने कहा—''बेटी, उम्र में तुम मेरी लड़की के बराबर हो, पर आज से मेरी बहन हो गयी। मैं अपने दामोदर को आज तुम्हारे हाथ सौंप रही हूँ। बड़े जाग्रत देवता हैं। हमेशा इसे अपने पास रखना। श्रद्धा से नित्य-पूजा करना। तेरा सारा संकट अपने-आप टलता जायगा। अब मेरा काम समाप्त हो गया। मैं वापस जा रही हूँ।''

यह कहकर उसने शालग्राम को मृड़ानी के हाथ में दिया। जिस प्रकार एक दिन अनाहूत की तरह आयी थी, उसी प्रकार उस दिन वह गायब हो गयी। अपने जीवन में मृड़ानी उसे पुनः देख नहीं सकी। इस शालग्राम को ग्रहण करने के पश्चात् मृड़ानी में तेजी से परिवर्तन होने लगा। यह देखकर घर के लोग चिन्तित हो उठे। उन्हें चण्डी मामा की भविष्यवाणी याद आयी। लोगों ने निश्चय किया कि अब मृड़ानी का विवाह कर देना चाहिए।

इस बात की सूचना मिलते ही मृड़ानी ने घोर विरोध किया, पर कौन सुनता है। लड़कियों का विवाह हिन्दू-धर्म का महत्वपूर्ण संस्कार है। ज्ञातव्य है कि बचपन में माता-पिता द्वारा प्रदत्त नाम का प्रभाव बच्चों पर पड़ता है। मृड़ानी यानी दुर्गा। मृड़ानी ने दुर्गा का रूप दिखाना प्रारंभ किया।

ऐन विवाह के दिन मृड़ानी ने बारात आने के पूर्व एक कमरे के भीतर जाकर दरवाजा बन्द कर लिया। परिवार के लोग मनाते रहे, पर उसने दरवाजा नहीं खोला। जब नाराज होकर बिगड़ने लगे तब कमरे में रखी सामग्रियाँ दही, मिठाई, चटनी आदि खिड़की की राह से लोगों पर फेंकने लगी। उसका यह उग्र रूप देखकर किसी को दरवाजा तोड़ने का साहस नहीं हुआ। चारों ओर क्रोध से सनसनी फैल गयी।

अन्त में लोगों ने समझ लिया कि यह विवाह नहीं होगा। काफी रात गये गिरिबाला चुपके से आयी और कहा—''तू विवाह नहीं करना चाहती तो मत कर। वैराग्य ही ले लेना, पर कब तक घर में बन्द रहेगी? दरवाजा खोल।''

दरवाजा खोलने पर माँ ने कहा—"आज से तुझे मैं भगवान् के हाथ सौंप रही हूँ। वे तेरी रक्षा करेंगे। अब तू झटपट एक काम कर। पिछवाड़े से नाना के घर भाग जा वरना तुझे लोग जान से मार डालेंगे।"

माँ की अनुमति पाकर मृड़ानी अपने शालग्राम और गौरांग देव के चित्र को लेकर नानी के घर भाग आयी। तत्कालीन समाज-व्यवस्था को देखते हुए माँ ने कितना कठिन कार्य किया, यह विचारणीय है।

मृड़ानी के वैराग्य को देखकर ननिहाल के लोग भी परेशान हुए। उन्होंने अपने दामाद को समझाया कि अगर इस समय कड़ाई की गयी तो दोनों परिवारों के लिए अहितकर होगा। इससे अच्छा है कि उसे समझा-बुझाकर सही रास्ते पर लाने की कोशिश की जाय। शायद इससे उसका मन-परिवर्तन हो जाय। जवान लड़की है, मारपीट आदि उचित नहीं है। लोगों को बात समझ में आ गयी। सभी शान्त हो गये।

लेकिन सभी सतर्क रहने लगे। हमेशा इस बात पर ध्यान दिया जाने लगा कि कहीं भाग न जाये। इस चौकसी का परिणाम अच्छा हुआ। कोई दुर्घटना नहीं हुई। मृड़ानी पूर्ववत् काम-काज करती रही।

एक बार लोग नवद्वीप-यात्रा पर गये तो मृड़ानी को साथ लेते गये। वहाँ महाप्रभु की मूर्ति देखकर वह आत्मविभोर हो गयी। महाप्रभु के प्रति उसके मन में अपने-आप अपार श्रद्धा उत्पन्न हो गयी। इस घटना के बाद से उसके मन में अक्सर इस बात की हुड़ुक उत्पन्न हुई कि कैसे उसे अपने अभीष्ट की प्राप्ति होगी?

एक दिन न जाने कौन चुपके से उसके कानों में आकर कह गया कि मंत्र-जप से ही इष्ट की प्राप्ति होगी। वे ही तुम्हें सही मार्ग दिखायेंगे। इस आदेश को पाते ही मृड़ानी जप करने में निमग्न हो गयी।

गिरिबाला ने देखा—लड़की में दिन-प्रतिदिन वैराग्य की भावना प्रबल होती जा रही है; वह अधिकतर जप-तप में लगी रहती है। उन्होंने सोचा कि इसके अशान्त मन में शान्ति दिलाने के लिए तीर्थ स्थानों में ले जाना चाहिए। इस निश्चय को कार्यरूप में परिणत करने के लिए उन्होंने सबसे पहले गंगासागर जाने का निश्चय किया।

यात्रा की तैयारी पूरी हो गयी। ऐन मौके पर गिरिबाला अस्वस्थ हो गयीं। संकल्प में व्याघात न हो, इसलिए अपनी छोटी बहन तथा देवर के साथ मृड़ानी को भेजा।

गंगासागर आकर मृड़ानी खुशी से फूली न समाई। जीवन में पहली बार घर-परिवार से दूर एक नये तीर्थस्थल में आकर गद्गद हो उठी। उधर अलक्ष्य में विधाता मुस्करा रहे थे। तीसरे दिन मौसी-चाचा का मुँह भय से सूख गया। उनके साथ मृड़ानी नहीं थी। परदेश में एक किशोरी बालिका यह हरकत करेगी, इसका विश्वास किसीको नहीं था। दोनों व्याकुल होकर चारों ओर खोजने लगे। लगातार

तीन दिनों तक खोज करते रहे, पर वह कहीं नहीं मिली। पता नहीं, समुद्र में डूब गयी या कहीं भाग गयी ? हारकर लोग वापस चल पड़े।

कलकत्ते में इस समाचार से परिवार में मातम छा गया।

❑ ❑ ❑

मृड़ानी गंगासागर में छिपी हुई थी। जब मौसी और चाचा चले गये तब पछाँह से आये यात्रियों के साथ सुदूर यात्रा करने के लिए चल पड़ी। इस दल में अधिकांश लोग पहाड़ी थे। इनके अलावा कुछ संन्यासी थे। मृड़ानी ने अपने को छिपाने के लिए पहाड़ी बालिका के रूप में पोशाक धारण की। लेकिन अपने गौर वर्ण को छिपाने में असमर्थ रही।

पहाड़ी लोगों ने मृड़ानी के रंग के आधार पर नाम रखा—गौरा माँ। कई महीने यह काफिला पैदल चलता रहा। काशी, अयोध्या, मथुरा, वृन्दावन आदि स्थानों का दर्शन करते हुए यह दल हरिद्वार पहुँचा। यहाँ आने के बाद मृड़ानी ने निश्चय किया कि अब कुछ दिनों तक वह हिमालय में तपस्या करेगी। इस निश्चय के बाद वे यात्रा के साथ-साथ जप करने लगीं।

❑ ❑ ❑

एक दिन चलते-चलते शाम हो गयी। घना जंगल। आसपास तो क्या दूर-दूर तक कहीं बस्ती दिखाई नहीं दे रही थी। एक भी राहगीर चलता-फिरता नहीं दिखाई दे रहा था। आखिर कहाँ आश्रय ले। शायद आगे कोई बस्ती दिखाई दे, इसी आशा से वह आगे बढ़ती गयीं। धीरे-धीरे बर्फ गिरने लगी। वह एक प्रकार से बर्फ का पुतला बन गयीं। ठंढ के कारण उसके हाथ-पैर अकड़ने लगे। अन्त में एक जगह गिर पड़ीं। ठीक इसी समय अनाहूत की तरह एक प्रौढ़ महिला आयी और उन्हें सहारा देती हुई बोलीं—"चलो उठो।"

इस डाँट में अद्भुत शक्ति थी। वह किसी सूरत से खड़ी हो गयी। उस अपरिचित महिला के सहारे वह बस्ती तक आयीं। बस्ती के पास आकर वह महिला न जाने कहाँ गायब हो गयी। बस्ती के लोगों ने मृड़ानी को इस हालत में देखकर काफी सेवा की।

इसी प्रकार वह एक बार निर्जन स्थान में पहँचीं। यहाँ मानव को कौन कहे, एक जानवर तक दिखाई नहीं दे रहा था। सामने एक मंदिर जरूर था, पर उसके भीतर जाने लायक कोई मार्ग नहीं था। कुछ आगे बढ़ने पर एक गड्ढा दिखाई दिया। मृड़ानी को लगा जैसे इसी गड्ढे से मंदिर तक जाने का मार्ग होगा। कुछ देर तक श्रम करने के बाद रास्ता मिला।

मंदिर के भीतर आते ही वह भय से चीख उठीं। मंदिर के भीतर एक शिवलिंग था जिस पर साँप लिपटे हुए थे। पास ही एक दीपक जल रहा था। मंदिर के ऊपर बेल का एक वृक्ष था जिस पर से पत्तियाँ झरकर नीचे गिर रही थीं।

मनुष्य की गंध पाते ही सभी सर्प शिव-मूर्ति को छोड़कर हट गये। अब मृड़ानी वहाँ बैठकर पूजा-अर्चना करने के बाद जप करने लगीं। कुछ देर के बाद चुपचाप जैसे गयी थीं वैसे ही बाहर निकल आयीं।

क्रमशः वह आगे केदारनाथजी की ओर बढ़ती गयीं। लेकिन यहाँ भी जंगल में राह भूल गयीं। आसपास धर्मशाला या बस्ती न रहने के कारण उन्हें दो दिनों तक अनाहार रहना पड़ा। फलतः कमजोरी के कारण थककर एक बड़े शिलाखण्ड पर सो गयीं। ठीक इसी समय एक पहाड़ी वृद्ध महिला आकर इनके सिर पर हाथ फेरती हुई बोली—"लल्ली, कहाँ जाओगी ?"

वृद्धा के स्नेह से गौरी माँ का चित्त प्रसन्न हो गया। अभी तक राह चलते मुसाफिरों को पहाड़ी लोग मदद देते हैं, स्नेह करते हैं। गौरी माँ ने कहा—"केदारनाथ जाना चाहती हूँ। लगता है, गलत रास्ते में आ गयी हूँ।"

वृद्धा ने हँसकर कहा—"ठीक समझा तुमने। चलो मेरे साथ। मैं सीधी राह दिखा देती हूँ।"

गौरी माँ आज्ञाकारी बालक की तरह वृद्धा के पीछे-पीछे चल पड़ीं। कुछ दूर आगे आने पर वृद्धा ने उँगली से दिखाते हुए कहा—"वह है मंदिर।"

गौरी माँ को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे पिछले दो दिनों से इसी जगह चक्कर काट रही हैं, पर इतने पास रहते हुए उन्हें मंदिर दिखाई नहीं दिया। इधर वृद्धा थोड़े समय के भीतर यहाँ ले आयी। वृद्धा से यही बात कहने के लिए पीछे पलटकर देखा तो वह वृद्धा अन्तर्धान हो चुकी थी। गौरी माँ समझ गयीं कि उनके दामोदर कदम-कदम पर उनकी सहायता कर रहे हैं, वरना ऐसी अलौकिक घटना क्यों होती!

हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों का दर्शन तथा तपस्या करने के बाद गौरी माँ हरिद्वार वापस आ गयीं। उन्हें भय हुआ कि अगर कोई परिचित मिल गया तो उन्हें जबरन घर वापस ले जा सकता है। हरिद्वार से वे ज्वालामुखी आयीं। यहाँ कुछ दिन रहने के बाद काश्मीर चली गयीं। वहाँ से वापस आकर गंगोत्री, यमुनोत्तरी दर्शन करने के पश्चात् द्वारिका चली गयीं।

द्वारिका में रणछोड़जी के सामने बैठकर गौरी माँ जप कर रही थीं। उनके आराध्य श्रीकृष्ण का अपर रूप रणछोड़जी हैं। जप करते हुए गौरी माँ ने देखा कि एक मनोहर श्याम वर्ण का बालक भोजन के पश्चात् बिना मुँह धोये खड़ा होकर हँस रहा है।

गौरी माँ ने सोचा—यह लड़का संभवतः इसी मंदिर के पुजारी का है। मंदिर के भीतर प्रसाद ग्रहण कर रहा था। लेकिन यह बात ठीक नहीं है। दूसरे ही क्षण पुजारी महाराज आये और उस बालक के हाथ-मुँह धुलाने के बाद गमछे से पोंछ दिया।

वह बालक वहाँ से चलकर सीधे मंदिर के सिंहासन पर जाकर बैठ गया। यह दृश्य देखते ही गौरी माँ का शरीर रोमांचित हो उठा। उनकी आँखों से अविरल गति से आँसू बहने लगे।

एक अपरिचित महिला को मंदिर के सामने इस तरह रोते देख पुरोहित ने पूछा—"क्या हुआ माताजी?"

माताजी इस प्रश्न का उत्तर क्या देतीं? उस वक्त तो वह आत्मविभोर हो गयी थीं। प्रत्यक्ष रूप से गोपाल का दर्शन उनके जीवन की महत्वपूर्ण घटना थी।

द्वारिका से वृन्दावन होती हुई गौरी माँ लम्बे अर्से बाद कलकत्ते में अपने घर आयीं। उनके वापस आने का समाचार चारों ओर फैल गया। उत्सुकतावश उन्हें देखने के लिए काफी लोग आये और तरह-तरह के प्रश्न करने लगे। अब तक कहाँ थीं, कहाँ-कहाँ गयीं, क्या-क्या देखा, कैसे खाती-पीती थीं आदि प्रश्न पूछे गये।

यहाँ कुछ दिन रहने के बाद गौरी माँ पुरी चली गयीं। यहाँ वापस आने के बाद बलराम बसु के घर ठहरीं जहाँ से रामकृष्ण देव के यहाँ गयीं। रामकृष्ण देव से हुई मुलाकात का जिक्र पहले किया जा चुका है।

❑ ❑ ❑

दक्षिणेश्वर से वापस आने के बाद गौरी माँ का आकर्षण रामकृष्ण देव के प्रति काफी बढ़ गया। उन्होंने निश्चय किया कि अब कुछ दिनों तक वह गुरु की सेवा करेंगी।

रामकृष्ण देव के कमरे के पास पहुँचते ही भीतर से आवाज आयी—"तू आ गयी है? अच्छा हुआ। तेरे बारे में चिन्ता कर रहा था।"

गौरी माँ ने कहा—"तुम यहाँ छिपे हो, अगर यह बात मैं जानती तो इतना चक्कर क्यों काटती? यहाँ आकर केवल इन्हीं चरणों की पूजा करती।"

अब गौरी माँ निरन्तर परमहंसजी के यहाँ आने-जाने लगीं। उन्हें परमहंसजी का स्नेह मिलता रहा। इसी बीच एक विचित्र घटना हुई।

गौरी माँ, रामचन्द्र दत्त तथा अन्य अनेक भक्त बैठे हुए थे। गौरी माँ के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि महाप्रभु गौरांग कीर्तन करते समय इतने भावविभोर हो जाते थे कि बाह्यज्ञानशून्य हो जाते थे और गिर पड़ते थे। परमहंसजी में उसी प्रकार के भाव तो आते हैं, पर ये गिरते क्यों नहीं?

एकाएक परमहंसजी उठकर खड़े हुए। ज्योंही भगवत्-प्रसंग की चर्चा हुई त्योंही वे झूमते हुए गिर पड़े। वहाँ बैठे सभी भक्त चकित रह गये। ऐसी घटना उनके सामने कभी नहीं हुई थी। लोगों ने दबी जबान से कहा—"ठाकुर कभी इस तरह गिरते नहीं, आज ऐसी घटना क्यों हो गयी?"

रामचन्द्र दत्त को समझते देर नहीं लगी कि जरूर कोई रहस्य है। उन्होंने ठाकुर से इस बारे में प्रश्न किया।

परमहंसजी ने जवाब देने के बदले गौरी माँ की ओर देखते हुए मुस्कराये। यह देखकर रामचन्द्र दत्त ने गौरी माँ से पूछा—"शायद आपको इसका कारण ज्ञात है?"

गौरी माँ ने अश्रुसिक्त स्वर में अपना अपराध स्वीकार किया। उस दिन उन्होंने निश्चय किया कि अब भविष्य में ठाकुर के प्रति कोई शंका नहीं करेंगी।

इसी प्रकार एक बार गौरी माँ नाव से खड़दह जा रही थीं। साथ में अन्य कई महिलाएँ थीं। दक्षिणेश्वर के समीप नाव के पहुँचते ही उन्होंने अपने सहयात्रियों से कहा—"आप लोग यहाँ कुछ देर इन्तजार कीजिए। मैं एक बार ठाकुर का दर्शन कर आऊँ।"

ठाकुर के कमरे के पास गौरी माँ ने देखा कि वे ध्यानस्थ हैं। उनकी आँखों से अविरल आँसू बह रहे हैं। फर्श पर प्रह्लाद का चित्र पड़ा था। गौरी माँ समझ गयीं कि इस चित्र के कारण ठाकुर को समाधि लग गयी है।

कुछ देर बाद ठाकुर बोले—'ज-ज-ल।'

पानी पीने के बाद ठाकुर स्वाभाविक हो गये। तुरत उन्होंने कहा—"घाट पर अपने साथियों को क्यों छोड़ आयी है? वे सब बड़ी बेचैन हो उठी हैं।"

ठाकुर की सेवा में लग जाने के कारण गौरी माँ का ध्यान बँट गया था। उन लोगों को घाट पर इन्तजार करने को कहकर चली आयी हैं, यह बात भूल गयी थीं। ठाकुर की आज्ञा पाते ही तुरत उन लोगों को भी दर्शन कराने ले आयीं।

❑ ❑ ❑

राखाल महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) उन दिनों बहुत छोटे थे। ठाकुर के पास दिन-रात रहते थे। उनमें बाल-हठ बहुत था। एक दिन उन्हें भूख महसूस हुई। भोजन के लिए मचल पड़े और परमहंसजी से कहा—"मुझे बहुत भूख लगी है। कुछ खाने को दो।"

उन दिनों दक्षिणेश्वर सुनसान इलाका था। वहाँ खाने-पीने की कोई सामग्री नहीं मिलती थी। ठाकुर उसे अपने साथ लेकर नदी किनारे आये और कहने लगे—"अरी गौरदासी, जल्दी आ! मेरे राखाल को भूख लगी है।"

वे बार-बार यही आवाज देने लगे। राखाल बालक था। अगर कोई समझदार होता तो समझ जाता कि ठाकुर उसे बहला रहे हैं, पर ठाकुर की महिमा को कौन जान सकता है? थोड़ी देर बाद एक नाव धीरे-धीरे आती दिखाई दी। किनारे लगते ही उस पर से बलराम बसु, गौरदासी आदि कई लोग उतरे। साथ में एक बाल्टी रसगुल्ला था।

ठाकुर ने प्रसन्न भाव से राखाल को पुकारते हुए कहा—"अरे, कहाँ गया? ले, कितना रसगुल्ला खायेगा। कहता रहा बड़ी भूख लगी है, ले खा।"

राखाल नाराज हो गया। कहा—"इतने लोगों के सामने इस तरह क्यों कहते हो?"

ठाकुर ने कहा—"इससे क्या हुआ? तुझे तो भूख लगी है। ले, खा ले।"

रामनवमी के दिन ठाकुर ने मिठाई से एक टुकड़ा लेकर शेष भाग गौरी माँ की ओर बढ़ा दिया। उसे तुरत गौरी माँ ने खा लिया।

यह देखकर विनोदी ढंग से ठाकुर ने कहा—"यह क्या किया? तुम तो रामनवमी के दिन उपवास रहती हो। आज तो वह भंग हो गया।"

गौरी माँ ने कहा—"तुम्हारे प्रसाद से विधि-निषेध नहीं होता।"

एक दिन सबेरे दक्षिणेश्वर में गौरी माँ से ठाकुर ने कहा—"गौरी, मैं पानी उड़ेल रहा हूँ, तू यहाँ मिट्टी सान।"

उस वक्त गौरी माँ पूजा के लिए फूल चुन रही थीं। तुरत पास आकर बोलीं—"यहाँ मिट्टी है कहाँ जो सानूँ?"

ठाकुर ने हँसकर कहा—"मैंने क्या कहा और तूने क्या सुना। जानती है, इस देश की माताओं को बड़ा कष्ट है। तुझे उनके लिए काम करना पड़ेगा। उनके दुःख को दूर करना पड़ेगा। मैं जानता हूँ, तू कर सकेगी।"

ठाकुर के शरीरान्त के पश्चात् गौरी माँ ने परमहंसजी की आज्ञा का अक्षरशः पालन किया था। लड़कियों को शिक्षित बनाना, उन्हें अपने पैरों पर खड़ी करना तथा रोजगारपरक कार्यों की शिक्षा देती रहीं। एक बृहद् आश्रम स्थापित करके अनेक अनाथ बालिकाओं का भरण-पोषण करती रहीं।

बातचीत के सिलसिले में एक दिन ठाकुर ने कहा—"देख बेटी, अभी तेरी थोड़ी साधना बाकी है। उसे तू संपूर्ण कर ले। अधूरा मत छोड़।"

गौरी माँ ने कहा—"जिसका मन गुरु-पद पर लगा हो, उसे साधना करने की क्या आवश्यकता?"

ठाकुर ने कहा—"नहीं, नहीं। आवश्यकता है। कहना मान और चली जा। उसे पूरा करके जल्दी आना।"

गुरु की आज्ञा मानकर गौरी माँ वृन्दावन चली गयीं। वहाँ एक निर्जन स्थान में कठोर तपस्या में निमग्न हो गयीं। सूर्योदय से सूर्यास्त तक निर्जल उपवास करते हुए, एक आसन पर पूरे नौ माह तक तपस्या करने की आज्ञा दी गयी थी।

इधर ठाकुर महाप्रस्थान की तैयारी करने लगे। अपने शरीरान्त के कई दिन पहले कहने लगे—"गौरदासी इतने दिनों तक पास थी। अब वह अंतिम समय देख नहीं पायेगी। उसके लिए दुःख हो रहा है। लग रहा है जैसे मेरे कलेजे के भीतर बिल्ली पंजा मार रही है।"

ठाकुर की बातें सुनते ही वृन्दावन समाचार भेजा गया। गौर माँ का कहीं पता नहीं चला। ठाकुर महासमाधि में लीन हो गये। शारदा माँ को हाथ से कंगन उतारते

देख ठाकुर प्रकट होकर बोले—''क्या मैं मर गया हूँ? इस कमरे से उस कमरे में गया हूँ। गौरी से पूछना, वह सब बता देगी।''

गौरी माँ की साधना पूरी हो गयी थी। वे वहाँ से प्रस्थान की तैयारी करने लगीं, तभी किसी भक्त से सूचना मिली कि ठाकुर का शरीरान्त हो गया है। वे बहुत रोने लगीं। ठाकुर ने धोखा देकर मुझे यहाँ भेज दिया। अब यह जीवन लेकर मैं क्या करूँगी? वे आत्महत्या करने को उद्यत हुईं तभी ठाकुर श्री रामकृष्ण प्रकट होकर बोले—''तू नहीं मरेगी। तुझे बहुत काम करना है। अगणित लड़कियों को शिक्षा देगी। उन्हें योग्य बनायेगी।''

ठाकुर की सौम्य मूर्ति देखकर वह स्तंभित रह गयीं। उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि गुरुदेव मरने नहीं देंगे। इस जगत् में अभी उसका काम समाप्त नहीं हुआ है। कुछ दिनों बाद श्री श्री माँ (शारदामाता) वृन्दावन आ गयीं। दोनों माता-पुत्री देर तक रोती रहीं। बातचीत के सिलसिले में श्री शारदामाता ने सधवा-वेश-परित्याग की चर्चा की।

गौरी माँ ने कहा—''ठाकुर नित्य वर्तमान हैं और तुम स्वयं लक्ष्मी हो। अगर तुम सधवा का वेश त्याग करोगी तो जगत् का अकल्याण होगा।''

शारदामाता ने कहा—''अंतिमकाल में तुझे देखने के लिए व्याकुल थे। वे कह गये हैं कि तुम्हारा जीवन जीवित जगदम्बा की सेवा में लगा रहेगा।''

रात को गुफा के भीतर धूनी जलाकर दोनों महिलाएँ आपस में बातचीत कर रही थीं। ठीक इसी समय दो साँप वहाँ प्रकट हुए। शारदामाता भयभीत होकर बोलीं—''गौरदासी, दो-दो साँप आये हैं, क्या होगा?''

गौरी माँ ने कहा—''दोनों ब्रह्ममयी का दर्शन करने आये हैं। डरने की कोई बात नहीं है। प्रसाद पाते ही चले जायेंगे।'' इतना कहने के बाद गौरी माँ ने एक कोने में दामोदरजी का प्रसाद उड़ेल दिया। दोनों साँप उसे पीकर धीरे-धीरे जैसे आये थे, वैसे चले गये।

❑ ❑ ❑

गौरी माँ बहुत दिनों बाद कलकत्ता वापस आयीं। परमहंसजी का तिरोधान हो चुका था। उनके संतानों (शिष्यों) से मुलाकात करने चल पड़ीं, पर मठ में न जाकर घाट किनारे बैठ गयीं। मठ में महिलाओं का प्रवेश निषिद्ध था। अचानक रामकृष्णानन्द स्वामी बाहर आये और गौरी माँ को देखकर भीतर चलने का अनुरोध किया, पर वे राजी नहीं हुईं बोलीं—''नियम सभी के लिए है। मैं नियम तोड़ना पसन्द नहीं करती।''

स्वामी रामकृष्णानन्द ने मठ में जाकर यह समाचार स्वामी विवेकानन्द को सुनाया तो वे दौड़े हुए आये। उन्होंने कहा—''ऐसा कैसे हो सकता है कि माँ अपनी

संतानों के पास न जा सके? तुम तो हमारी माँ हो।'' इतना कहने के पश्चात् बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये, स्वामी विवेकानन्द उनका हाथ पकड़कर भीतर ले गये।

मठ में प्रवेश करते ही गौरी माँ ने देखा—स्वामी ब्रह्मानन्द लोहे की कढ़ाही माँज रहे हैं। यह दृश्य देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। यह वही राखाल है जिसे गोद में, पीठ पर लेकर घूमती रहीं, जो रसगुल्ला खाने के लिए जिद करता रहा। उसे वहाँ से हटाकर गौरी माँ स्वयं बरतन माँजने लगीं।

कुछ दिनों बाद वे तीर्थयात्रा करने के उद्देश्य से दक्षिण भारत गयीं। रामेश्वर मंदिर में आम लोगों को जाने नहीं दिया जाता। गौरी माँ गंगोत्री का जल रामेश्वरजी पर अपने हाथ से चढ़ाना चाहती थीं, पर उन्हें भीतर जाने की आज्ञा नहीं दी गयी। जैसा साधारण लोग दर्शन करते हैं, वैसा करने की अनुमति मिली। मंदिर के भीतर केवल पुजारी जा सकता है। गौरी माँ ने सोचा, अगर रामेश्वरदेव की कृपा होगी तो वे हाथ से जल अवश्य ग्रहण करेंगे। यह सोचकर वे मंदिर में बैठकर स्तोत्र-पाठ करने लगीं। एक महिला के मुख से धाराप्रवाह संस्कृत श्लोकों का उच्चारण सुनकर सभी प्रभावित हुए। अन्त में लोगों ने उन्हें गंगोत्री का पवित्र जल चढ़ाने की अनुमति दी।

दक्षिण भारत की यात्रा समाप्त करने के बाद वे कलकत्ता वापस आयीं और ठाकुर की आज्ञा का पालन करने के लिए आश्रम की प्रतिष्ठा करने में लग गयीं। सन् 1895 ई० में बैरकपुर के पास शारदामाता के नाम पर श्री श्री शारदेश्वरी आश्रम की स्थापना हुई। पहले कुल पचीस कुमारी, सधवा और विधवाएँ आश्रम में आकर रहने लगीं। इसके बाद क्रमशः उनकी संख्या बढ़ती गयी। तत्कालीन स्वनामधन्य लोगों ने उन्हें मदद दी। गौरी माँ लड़कियों को केवल शिक्षा नहीं देती थीं, बल्कि उन्हें साक्षात् जगदम्बा मानकर पूजा करती थीं। इन बालिकाओं में एक बालिका ऐसी थी जिसके कई सहोदर मर गये थे। दीर्घजीवी संतान हो, इस कामना को लेकर लड़की की दादी ने भगवान् से प्रार्थना की। एक वृद्धा ने परामर्श देते हुए कहा—''भगवान् को समर्पित कर देने पर उसकी मृत्यु नहीं होगी। इस बार जो संतान हो, उसे भगवान् को समर्पित कर देना।''

कुछ दिनों बाद इस परिवार में एक बालिका ने जन्म लिया। जब वह पाँच वर्ष की हुई तब गौरी माँ ने बालिका की दादी से कहा—''अब इसे देवता के निकट समर्पित कर दो।''[1]

इस बालिका का नाम दुर्गा था। सभी लोग इसे पुरी-धाम ले गये। वहीं जगन्नाथ मंदिर में देव-विग्रह से उसका विवाह हुआ। संभवतः सम्पूर्ण भारत में दुर्गा ही एक ऐसी बालिका थी जिसका विवाह देव-मूर्ति के साथ हुआ था। गौरी माँ यद्यपि

---

1. सम्पूर्ण कहानी के लिए इसी पुस्तक में 'दुर्गा माँ' अध्याय देखें।

गौरांग प्रभु को अपना पति और नवद्वीप को ससुराल मानती थीं, पर जिस प्रकार दुर्गा का विवाह जगन्नाथ-मूर्ति से हुआ था, उस प्रकार गौरी माँ का नहीं हुआ था।

स्वामी विवेकानन्द आदि ठाकुर के शिष्य गौरी माँ को माँ के रूप में मानते थे। उम्र में स्वामी विवेकानन्द गौरी माँ से 5-6 वर्ष छोटे थे। इसी रिश्ते से गौरी माँ की माँ गिरिबाला देवी को दीदी माँ (नानीजी) कहते थे। सन् 1894 ई० में जब स्वामी विवेकानन्द शिकागो में थे तब उन्हें गौर माँ की कमी महसूस हुई। अगर वे वहाँ रहतीं तो शायद स्वामीजी उनसे काम लेते। अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा था—"गौर माँ कहाँ हैं? यहाँ वैसी हजार गौर माँ की जरूरत है जो महती तथा चेतनादायिनी हो।"

गौर माँ भोजन बहुत सुन्दर बनाती थीं। खासकर 'जगा' खिचड़ी। यह खिचड़ी रामकृष्ण मिशन में आयोजित दुर्गा-पूजा के अवसर पर बनाकर भोग दिया जाता है जिसे 'प्रसाद' कहा जाता है। इसका स्वाद कुछ अलग किस्म का होता है। एक बार भोजन के पश्चात् स्वामीजी ने कहा था—"गौरी माँ जब तुम मर जाओगी तब तुम्हारा दाहिना हाथ काटकर रख लूँगा। जब हमलोगों को प्रसाद खाने की इच्छा होगी तब वही हाथ भोजन बनायेगा।"

गौर माँ एक बार ठाकुर के कई शिष्यों स्वामी विवेकानन्द, स्वामी योगानन्द तथा अद्वैतानन्द को लेकर पैदल तारकेश्वर जा रही थीं। रास्ते में एक तालाब के किनारे भोग समाप्त करने के बाद सभी आराम करने लगे। पड़ोस के गाँव से कुछ महिलाएँ आयीं। बातचीत के सिलसिले में किसी ने पूछा—"ये लोग आपके कौन हैं?"

गौर माँ ने कहा—"सब मेरे लड़के हैं।"

महिलाओं को बड़ा आश्चर्य हुआ। खासकर अद्वैतानन्दजी को देखकर। वे गौर माँ से उम्र में काफी बड़े थे। कौतूहलवश एक महिला ने पूछा—"क्यों माताजी, वह बूढ़ा साधु भी तुम्हारा लड़का है?"

गौर माँ ने गंभीर होकर कहा—"नहीं, वह मेरी सौत का लड़का है।"

इस वार्तालाप को सभी स्वामी सुन रहे थे। वहाँ से रवाना होकर कुछ दूर आने के बाद स्वामी विवेकानन्द ने कहा—"गनीमत है कि हम दोनों बूढ़े नहीं हैं वरना हम भी सौत के लड़के बनते।"

स्वामीजी अक्सर इस तरह गौर माँ के साथ विनोद करते और तंग किया करते थे। बातचीत के सिलसिले में स्वामीजी ने कहा था—"गौर माँ, एक बार तुम मेरे साथ अमेरिका चलो। वहाँ के लोगों को दिखाऊँ कि हमारे देश में कैसी महिलाएँ जन्म लेती हैं।"

आश्रम के निर्माण में तत्कालीन अनेक लोगों ने सहायता दी थी, पर प्रारंभ में उन्हें कितनी कठिनाई उठानी पड़ी थी, उसका उदाहरण देना आवश्यक है। एक दिन

आश्रम में रहनेवाली लड़कियों को भोजन देने लायक कोई सामग्री नहीं थी। लाचारी में वे झोला लेकर भीख माँगने निकल पड़ीं। इस प्रकार अक्सर वे भीख माँगने चली जाती थीं।

उस दिन एक अपरिचित घर में गयीं। गृहस्वामिनी ने पूछा—"क्या बात है? कैसे आयी हो?"

गौर माँ ने कहा—"मैं एक भिखारिन हूँ माँ। कुछ भीख दो।"

माँग में सिन्दूर, हाथों में सोहाग-चिह्न, शरीर पर गेरुआ वस्त्र देखकर मालकिन ने विस्मय से पूछा—"क्यों बेटी, तुम्हारे पति क्या करते हैं?"

यह पहले ही कहा जा चुका है कि गौरांग प्रभु को गौर माँ अपना पति मानती थीं जो कि संन्यास ग्रहण करने के बाद गृहत्यागी हो गये थे। गौर माँ ने कहा—"पति संन्यासी हो गये हैं इसीलिए मैं भी संन्यासिनी बन गयी हूँ। लेकिन मुझे कुछ लड़कियों को पालना पड़ता है। आज मेरे घर अन्न का एक दाना नहीं है, इसलिए आपसे भीख माँगने आयी हूँ।"

मालकिन को दया आ गयी। उन्होंने कुछ चावल, दाल, तरकारी आदि दिये। गौर माँ के बाहर जाते ही मालकिन ने एक लड़के को बुलाकर कहा कि तू इसके पीछे-पीछे जा और देखकर आ। यह कहाँ रहती है, क्या करती है, पर यह जानने न पाये।

वह लड़का चुपचाप गौर माँ के पीछे-पीछे चल पड़ा। गौर माँ पैदल जा रही थीं। अचानक उनके सामने एक बग्घी आकर रुक गयी। गाड़ी में संस्कृत कॉलेज के अध्यक्ष डॉक्टर महामहोपाध्याय सतीशचन्द्र विद्याभूषण उतरे और गौर माँ के चरणरज को सिर से लगाया। इसके बाद उन्हें गाड़ी पर बैठाकर आश्रम पहुँचा गये।

लड़का बग्घी के पीछे बैठकर आश्रम तक आया और यहाँ की सारी स्थिति देखने के बाद वापस जाकर उसने सारा विवरण सुनाया। मालकिन मन ही मन लज्जित हो उठीं। दूसरे दिन स्वयं आश्रम में आकर क्षमा माँगने लगीं।

इसी प्रकार एक दिन शाम के वक्त एक सौम्यदर्शना महिला आयीं। सामान्य वेशभूषा, माँग में सिन्दूर। आते ही बोलीं—श्री श्री माँ (शारदामाता) ने मुझे यहाँ भेजा है। उन्होंने कहा है कि मेरी एक गौरीपुरी है। गोया बागान में उसका आश्रम है। तुम वहाँ जाओ, तुम्हें शान्ति प्राप्त होगी।"

पहली मुलाकात में ही वे एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट हुए। बिदा करते समय गौरी माँ ने कहा—"आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। कभी-कभी पत्र लिखियेगा।"

"जरूर, जरूर। यह तो मेरे लिए सौभाग्य की बात होगी।"

"आपका पता क्या है?"

"सरोजबाला देवी, गौरीपुर, आसाम। इतना लिखने पर पत्र मुझे मिल जायगा।"

एक आश्रमवासिनी ने पूछा—"कहीं आप रानी माँ तो नहीं हैं ?"

अत्यन्त कुंठा के साथ महिला ने जवाब दिया—"दीदी, मैं कोई नहीं हूँ। सामान्य महिला हूँ। आप लोगों के सत्संग से पवित्र हो गयी।"

वास्तव में यह महिला गौरीपुर की रानी थी। आगे चलकर आश्रम के निर्माण में मोटी रकम दान में इनसे प्राप्त हुई थी। एक ओर यह स्थिति थी। दूसरी ओर आश्रम-संचालन-समिति के एक सदस्य कालीपद बनर्जी ने आकर एक दिन यह सूचना दी कि एक धनाढ्य व्यक्ति आश्रम को एकमुश्त मोटी रकम अपने पिता की स्मृति में दान देना चाहता है।

तुरत गौरी माँ ने कहा—"कालीपद, जरा इस व्यक्ति के बारे में पता लगाओ। मेरा मन इनका दान लेने को मना कर रहा है। कोई बात है।"

कई दिनों बाद कालीपद ने आकर सूचना दी—"इस व्यक्ति ने अपनी विधवा भाभी को धोखा देकर काफी रकम मार ली है।"

गौरी माँ ने कहा—"इनसे मैं एक पाई भी दान नहीं ले सकती। जो रकम वे इस आश्रम को दान में देना चाहते हैं, उसे अपनी भाभी को दे दें। इससे आश्रम की सेवा होगी और उनका भी कल्याण होगा।"

❑ ❑ ❑

ब्रज रमणी ने शालग्राम गौरी माँ को दिया था। उसे वे हमेशा अपने पास रखती थीं। यात्रा के समय गले में लटकाकर चलती थीं। गौरी माँ की इस श्रद्धा-भक्ति को देखकर शारदामाता ने कहा था—"गौरदासी ने पत्थर के एक ढोके को लेकर किस तरह अपने दिन गुजार दिये।"

अपने दामोदर के साथ गौर माँ का कितना प्रगाढ़ सम्बन्ध था, इसका उदाहरण निम्नलिखित घटनाओं से लग जाता है।

एक दिन सारा कामकाज समाप्त करने के पश्चात् दोपहर को वे आराम करने के लिए अपने कमरे में आयीं, पर न जाने क्यों बेचैनी अनुभव करने लगीं। यह बेचैनी क्यों हो रही है, इसे वे स्वयं भी नहीं समझ पा रही थीं।

थोड़ी देर बाद बोल उठीं—"अच्छा, यह बात है। दामोदर को दूध पीने की आदत है। आज उन्हें दूध देना भूल गयी। शायद इसीलिए उन्हें नींद नहीं आ रही है।" इतना कहने के पश्चात् वे पूजा-घर में गयीं। अपने दामोदरजी को दूध का भोग दिया। इसके बाद बाहर आकर बोलीं—"दूध पीकर वे सो गये।"

इसी प्रकार एक दिन गौर माँ की तबीयत ठीक न रहने के कारण उस दिन दामोदरजी के लिए प्रतिदिन की तरह खाना नहीं बना। थोड़ी फल-मिठाई भोग में देकर वे अपने कमरे में आकर सो गयीं।

आधी रात को घर के लोगों ने देखा कि वे रसोईघर में पूरी तल रही हैं। जब उनसे सवाल किया गया तो बोलीं—"एक झपकी लेने के बाद दामोदर ने कहा कि भूख लगी है, इसलिए यह सब कर रही हूँ।"

अक्सर दामोदर को गोद में लेकर वे भजन गातीं और अपने आँसुओं से उन्हें नहलाती थीं। उनका दामोदर-प्रेम वास्तव में भक्ति की पराकाष्ठा थी !

इधर दामोदर भी अपने पुजारी का विशेष ध्यान रखते थे। एक बार कलकत्ता से पैदल ही गौरी माँ जयरामबाटी जा रही थीं। मार्ग में जहानाबाद के समीप डाकुओं का एक गिरोह मिला। उन दिनों बंगाल में अनेक लठैत, डाकू और लुटेरे रहते थे। डाकुओं का ख्याल था कि इस महिला के पास काफी रकम, जेवर आदि हैं। वे लोग मुसाफिर के रूप में माँ के पीछे-पीछे चल पड़े।

कुछ दूर जाने के बाद गौरी माँ पूजा करने के उद्देश्य से एक पेड़ के नीचे बैठ गयीं। दामोदर को भोग देने के लिए डाकू पड़ोस के गाँव से नाना प्रकार की भोग-सामग्री ले आये। पूजा करते समय बार-बार बाधा आयी। गौर माँ को संदेह हो गया। वे उन सामग्रियों को दूर फेंकती हुई तीव्र स्वर में बोलीं—"तुम लोग शैतान हो, दुष्ट हो, पापी हो। भोग-सामग्री में जहर मिलाकर लाये हो?"

गौरी माँ की रुद्र मूर्ति देखकर सभी डर गये। उन्हें इस बात पर आश्चर्य हुआ कि हमने जहर मिलाया है, इसे वे कैसे जान गयीं। जरूर कोई शक्तिसम्पन्न महिला हैं। तुरत उन लोगों ने अपने अपराध के लिए क्षमा माँगी।

गौरी माँ ने कहा—"तुम लोग अपना दुष्कर्म छोड़कर अन्य कोई काम करो। भगवान् तुम्हारी सहायता करेगा।"

इसी प्रकार एक घटना दामोदरजी से हुई थी। उन दिनों गौरी माँ वर्धमान जिले के बाघनापाड़ा गाँव में गयी थीं। वहाँ बलदेवजी के मंदिर के पास एक पेड़ के नीचे रहती थीं। पास ही एक तालाब था। एक दिन वे चुपचाप गले में दामोदर को लटकाये बैठी थीं। इसी समय गाँव की एक बहू उनके सामने से ही पोखर के आसपास कुछ साग खोंटकर ले गयी।

रात को बहू ने स्वप्न में देखा—"एक साँवला बालक आकर शिकायत कर रहा है—"क्योंजी, तुम कैसी औरत हो? इतना साग तालाब से उठा लायी। मैं वहीं किनारे बैठा था। तुमने थोड़ा-सा भी नहीं दिया।"

वधू ने पूछा—"तुम हो कौन?"

बालक ने कहा—"वाह रे, मुझे तुमने नहीं देखा है? मैं तो तुम्हारी योगिनी माँ (गौरी माँ) के पास रहता हूँ।"

वधू ने सोचा—"बच्चा है। साग खाने की इच्छा हुई थी, शायद योगिनी माँ के डर से कहने का साहस नहीं हुआ।"

दूसरे दिन कुछ साग लेकर बहू योगिनी माँ के पास आकर बोली—"योगिनी माँ, आपके पास एक साँवला लड़का रहता है? कल मुझसे खाने के लिए साग माँग रहा था।"

गौर माँ ने कहा—"नहीं तो। मेरे यहाँ कोई लड़का नहीं है।"

एक वृद्धा वहाँ बैठी हुई थी। वे बोल उठीं—"जरूर है। बड़ा शैतान लड़का है।"

इसके बाद विनोदी ढंग से बोली—"धन्य हो तुम। इतने दिनों से घर-गृहस्थी चला रही हो और साँवला लड़का कौन है, उसे पहचान भी नहीं सकी? बलिहारी है तुम्हारी बुद्धि की।"

यह बात सुनते ही सभी चौंक उठे। बहू भी समझ गयी कि योगिनी माँ के दामोदरजी बालक के रूप में उससे साग माँगने गये थे। उसने दामोदर के सामने साग रखकर उन्हें प्रणाम किया।

गौर माँ ने दामोदर से कहा—"क्यों ठाकुर, क्या मैं इतनी गयी-गुजरी हूँ कि तुम्हें थोड़ा साग नहीं खिला सकती थी? इसके लिए दूसरे से माँगने गये थे?"

योगिनी माँ के ठाकुर गाँव की एक बहू से साग माँगने गये थे, यह बात बिजली की तरह पूरे गाँव में फैल गयी। दामोदर का दर्शन करने के लिए दूर-दूर से दल के दल लोग आने लगे। सभी अपने साथ साग लेकर आये थे। देखते-देखते साग का अम्बार लग गया। साग के साथ-साथ अन्य सामग्रियाँ आयीं। इसके बाद कई दिनों तक दामोदरजी का साग-उत्सव चलता रहा।

ठाकुर रामकृष्ण के तिरोधान के पश्चात् शारदामाता अपनी मानस-पुत्री गौरी माँ का बहुत ख्याल रखती थीं। उसी प्रकार गौरी माँ भी शारदामाता को सगी माँ से अधिक श्रद्धा करती थीं।

शारदामाता इनके उग्र तथा साहसी स्वभाव से भलीभाँति परिचित थीं। एक बार जब वे गंगा-स्नान कर रही थीं तब उन्होंने एक महिला की चीख सुनी। नहाते समय पैर फिसल जाने के कारण वह महिला नदी में गिर पड़ी और 'बचाओ-बचाओ' आवाज लगाती हुई नदी में बहने लगी। घाट किनारे खड़े लोग 'हाय-हाय' करने लगे, पर कोई बचाने के लिए आगे नहीं बढ़ा। पुरुषों की कापुरुषता देखकर वह बिगड़ उठीं और स्वयं कछारा मारकर नदी में कूद पड़ीं।

गौरी माँ के साथ आयी लड़कियाँ यह जानती थीं कि इन्हें तैरना नहीं आता, केवल आवेश में आकर कूद गयी हैं। इस बात को स्वयं गौरी माँ भी भूल गयी थीं। लड़कियों के चीखने पर कई पुरुष पानी में कूद पड़े और दोनों को बचा लाये।

इसी प्रकार एक बार आश्रम में लड़कियों के सामने गौरी माँ पुराण-पाठ कर रही थीं। अचानक किसी महिला का आर्तनाद सुनते ही तुरत लाठी लेकर उस घर

पर पहुँच गयीं। वहाँ जाकर देखा कि एक बहू को लोग मार रहे हैं। कानून का डर दिखाकर उस बहू को बचा लायीं और पुलिस की सहायता से उसके पिता के घर पहुँचा आयीं। बाद में ससुरालवाले आये, गौरी माँ से क्षमा-याचना करते हुए इस बात का आश्वासन दिया कि भविष्य में ऐसी घटना नहीं होगी।

गौरी माँ ने कहा—''परायी लड़की को जब गृहलक्ष्मी के रूप में लाये हो तब उसे वैसा सम्मान दो।''

इसी प्रकार एक बार गया में उचित दक्षिणा न मिलने के कारण वहाँ के पण्डों ने कुछ महिलाओं को एक कमरे में बन्द कर दिया। वे उस कमरे में रोने-चिल्लाने लगीं। इस आवाज को सुनकर गौरी माँ वहाँ आयीं। साथ की महिला है, समझकर पण्डों ने उनसे मिलने दिया। बाद में बाहर निकलकर गौरी माँ ने कहा—''मैं दक्षिणा का प्रबंध करने जा रही हूँ।''

इतना कहकर वे सीधे पुलिस के उच्चाधिकारी से मिलीं और उन्हें सारी घटना से अवगत किया। पुलिस-अधीक्षक पूरे फोर्स के साथ आये। इस प्रकार उन महिलाओं को मुक्ति मिली।

सच तो यह है कि नारी होते हुए भी गौरी माँ साक्षात् रुद्राणी थीं। कहीं, किसीके साथ होने वाले अन्याय को वह सहन नहीं कर पाती थीं। शायद इस तेजस्विता के पीछे उनके गुरु का आशीर्वाद था।

एक बार वे अपने दो पुरुष भक्तों के साथ जा रही थीं। कई शराबी गुण्डे पीछे पड़ गये। भक्तों की हालत खराब हो गयी। अचानक गौरी माँ ने जलती आँखों से पीछे की ओर देखा। सभी गुण्डों को लगा जैसे दो मशालें तेजी से उनकी ओर बढ़ रही हैं। देखते ही देखते सभी भाग गये।

तभी गौरी माँ ने कहा—''शिवनाथ, तुम लोग क्यों रुक गये? मेरे पीछे-पीछे चले आओ।''

सन् 1909 की घटना है। कलकत्ता स्थित श्री विपिन कृष्ण चौधुरी के भवन में बैठी गौरी माँ एक ग्रंथ का पाठ कर रही थीं। अचानक उन्होंने देखा—शारदामाता आयी हैं। गेरुआ वस्त्र, सिर के बाल फैले हुए, तेज चाल—सब कुछ अस्वाभाविक। पास आकर बोलीं—''गौरी बेटी, आजकल तुम यहाँ रहती हो? मैं तेरे पास आयी हूँ।''

इस वक्त शारदामाता को देखकर गौरी माँ विस्मित रह गयीं। बैठने के लिए आसन देकर गौरी माँ ने कहा—''मेरे लिए सौभाग्य की बात है जो अनायास दर्शन मिल गया। यहाँ बैठिये। अरे आशु, अरे केना, तुम सब कहाँ हो? देखो, मेरी माँ आयी हैं।''

श्री श्री माँ ने कहा—''किसीको बुलाने की जरूरत नहीं। कमरे में आओ।''

गौरी माँ चुपचाप शारदामाता के आज्ञानुसार उनके पीछे-पीछे कमरे में गयीं। कमरे में आते ही शारदामाता ने गौरी माँ को जमीन पर सुला दिया। इसके बाद दोनों हाथों से उसके बदन को झाड़ने लगीं। गौरी माँ एकटक उनकी ओर देखती रहीं। गौरी माँ की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। काम समाप्त करने के बाद शारदामाता ने कहा—"घबराना नहीं, मैं थोड़ा-सा ले जा रही हूँ।"

इतना कहकर शारदामाता चल पड़ीं। कुछ दूर तक उन्हें छोड़ने के लिए गौरी माँ बाहर आयीं। फिर चुपचाप वापस आकर बैठ गयीं। एक लड़की यह सब घटना देखती रही, पर उसकी समझ में कुछ नहीं आया।

उसी रात को गौरी माँ को तेज बुखार आया। दूसरे दिन चेचक के बड़े-बड़े दाने तमाम बदन पर उभर आये। रोगी की हालत इतनी खराब हो गयी कि डॉक्टर भी निराश हो गये।

उधर शारदामाता को भी तेज बुखार के साथ-साथ चेचक निकल आयी। दोनों मरीजों को देखने के बाद डॉक्टर ने कहा—"माँ-बेटी ने मिलकर इस रोग को बाँट लिया है। अब दोनों ही अपनी इच्छा से इसे दूर कर सकती हैं।"

रोग से मुक्ति पाने के बाद गौरी माँ विष्णुपुर गयीं। वहाँ एक ब्राह्मण ने आकर शारदामाता से निवेदन किया कि वह माँ के आगमन की प्रतीक्षा काफी दिनों से कर रहा है। जगज्जननी एक बार कुछ देर के लिए उसकी कुटिया में आकर चरण-रज दें तो वह आजन्म आभारी रहेगा।

लेकिन यह संभव नहीं हुआ। पहले से ही एक अन्य भक्त के यहाँ ठहरने की बात तय हो गयी थी। वहाँ से जिस दिन शारदामाता स्टेशन की ओर रवाना हुईं, चलते समय ब्राह्मण ने अत्यन्त कातर भाव से निवेदन किया। चूँकि गाड़ी का समय हो गया था, इसलिए कई लोगों ने आपत्ति की।

विफल-मनोरथ होकर ब्राह्मण रोने लगा। शारदामाता का मन दुःखी हो गया। लेकिन इतने लोगों के सामने वे ब्राह्मण के अनुरोध को स्वीकार करने में हिचक रही थीं। शारदामाता ने कहा—"ब्राह्मण भाई, मुझे शाप मत देना। इन लोगों को समझाओ।"

गौरी माँ ने कहा—"माँ, अगर तुम्हारी इच्छा है तो कहो। ब्राह्मण के घर चलें। भक्त रो रहा है।"

माँ का इशारा पाते ही गाड़ी वापस मुड़ गयी। यह देखकर एक भक्त ने कहा—"काम अच्छा नहीं हुआ। गाड़ी छूट जायगी।"

गौरी माँ उत्तेजित कंठ से बोलीं—"गाड़ी छूट नहीं सकती।"

ब्राह्मण की इच्छा पूर्ण हुई। मृन्मयी देवी के सामने उसने माँ की पूजा की। शारदा माँ को फल का भोग लगाया। वापस आते समय गौरी माँ से शारदामाता ने

कहा—"अच्छा ही हुआ। ठाकुर ने इस मृन्मयी देवी का दर्शन करने के लिए कहा था। कई वर्ष बीत गये, दर्शन नहीं कर सकी थी। इस बार तुम्हारे कारण हो गया। ठाकुर ने एक दिन भावाविष्ट होकर कहा था—विष्णुपुर में मृन्मयी देवी का दर्शन करना। मैंने देखा है, वे अत्यन्त जाग्रत देवता हैं।"

स्टेशन आने पर ज्ञात हुआ कि गाड़ी अभी तक नहीं आयी है। साथ में कुछ भक्त आये थे। स्टेशन पर कुली-यात्री आदि की भीड़ हो गयी। गौरी माँ ने उन लोगों से कहा—"जानकीमाता को प्रणाम करो।"

आज्ञा पाते ही प्रणाम की होड़ लग गयी। स्टेशन के समीप बाग से फूल लाकर शारदामाता के चरणों में लोग अंजलि देने लगे। गाड़ी छूटते समय कई सौ कंठों से आवाज आयी—'बोल दे जानकीमाई की जय।'

सन् 1908 की घटना है। बशीरहाट में होली के दिन उत्सव हो रहा था। दामोदर को भोग देने के बाद भक्तों को प्रसाद देने की तैयारी होने लगी। श्रीमती शैलबाला ने देखा कि भक्त काफी हैं। केवल एक बहुगुना खिचड़ी बनी है।

गौरी माँ ने कहा—"शैल, पत्तल बिछाने की तैयारी कर। भक्तों को प्रसाद देना है।"

शैल ने सोचा—माँ को अन्दाज नहीं है। कम-से-कम एक बहुगुना खिचड़ी और चाहिए। वे अनसुनी कर फिर से खिचड़ी बनाने के लिए तैयारी करने लगीं। यह देखकर गौरी माँ ने कहा—"तुझे पत्तल बिछाने के लिए कहा न। यह क्या करने बैठ गयी। चल, पत्तल बिछा।"

शैल मन ही मन असंतुष्ट होकर आदेश का पालन करने लगी। इधर सोचती जा रही थी—इतने लोग खानेवाले हैं, कैसे एक बहुगुना खिचड़ी में होगा?

सभी लोग खा चुके। गौरी माँ ने कहा—"अब तू भी बैठ जा और नौकरानियों से कह दे कि वे लोग पत्तल लेकर बैठ जायँ।"

शेष सभी लोग खाने बैठ गये। गौरी माँ ने खिचड़ी परोसते हुए शैल से पूछा—"और चाहिए?"

शैल को डर था कि अभी कई लोग खा रहे हैं, कहीं कमी पड़ गयी तो बड़ी भद्दी बात होगी। यह सोचकर उसने कहा—"नहीं।"

सभी लोगों को भरपेट खिलाने के बाद गौरी माँ ने कहा—"मैं जानती हूँ कि तू चिन्ता कर रही थी कि कहीं घट न जाय। जब तक चूल्हे में आग जलती रहेगी, कमी नहीं होगी। आग के बुझ जाने पर कुछ नहीं होता।"

यह सुनकर शैल के मन का सारा मैल दूर हो गया।

बैरकपुर के आश्रम में उत्सव हो रहा था। अनेक भक्त उपस्थित थे। शाम के बाद गौरी माँ ठाकुर की आरती कर रही थीं। अचानक वे चीख उठीं—"मठ में सर्वनाश हो गया, रे। नरेन (स्वामी विवेकानन्द) ने धोखा दिया।"

उपस्थित सभी लोगों का हृदय अनजाने भय से काँपने लगा। गौरी माँ की बातों को सुनकर मुचीराम ने कहा—''ऐसी बात मत कहो, माँ। मैं अभी बेलुड़ मठ से समाचार लेकर आ रहा हूँ।''

इसके बाद बेलुड़ से समाचार आया—स्वामीजी महाप्रयाण कर चुके हैं।

इसी प्रकार स्वामी रामकृष्णानन्द अस्वस्थ होकर मठ में वापस आये। अक्सर गौरी माँ उन्हें देखने चली जाती थीं। एक दिन कालीघाट से कालीमाता का चरणामृत लेकर मठ में गयीं तो देखा—स्वामी रामकृष्णानन्द सो रहे हैं। एक सेवक को चरणामृत देकर वे चली गयीं। निद्राभंग के बाद स्वामी रामकृष्णानन्द ने चरणामृत पान किया, पर मन ही मन अभिमान हुआ कि उन्हें बिना बताये वे चली क्यों गयीं।

इस घटना के तीन-चार दिन बाद गौरी माँ ने देखा—दरवाजे के बाहर स्वामी रामकृष्णानन्द खड़े हैं। काफी स्वस्थ, भाल पर चन्दन का टीका, ओठों पर मुस्कान। गौरी माँ को एकटक देखते देख रामकृष्णानन्दजी ने कहा—''वह गिरीश की पारी है।''

जब तक गौरी माँ कुछ पूछताछ करें, उसके पहले ही वह मूर्ति गायब हो गयी। गौरी माँ तुरत समझ गयीं कि अंतिम समय मुलाकात नहीं हो सकी थी, इसीलिए उनकी आत्मा यही बात कहने आयी थी।

दोपहर को इसकी सूचना मिल गयी। इस प्रकार गौरी माँ के जीवन में भगवान् रामकृष्णजी की कृपा से अनेक चमत्कार हुए थे। वे स्वयं चमत्कार नहीं दिखाती थीं। गौरी माँ को तुलसीदास का यह भजन बहुत प्रिय था—श्री रामचन्द्र कृपालु भज मनु हरण भव भय दारुणम्। अक्सर इसे गाया करती थीं।

अचानक माघ मास में एक दिन उन्होंने स्वप्न में देखा कि स्वर्ग से देवदूत रथ लेकर आये हैं। उनमें से एक ने कहा—''आपका इस लोक में कार्य समाप्त हो गया है। अब आपको स्वस्थान में ले जाने के लिए हम आये हैं।''

गौरी माँ तुरत जाने के लिए खड़ी हो गयीं, पर सहसा बाधा उपस्थित हो जाने के कारण वे नहीं जा सकीं। लेकिन वे समझ गयीं कि अब अधिक दिन यहाँ रहना सम्भव नहीं है। भगवान् का बुलावा आ गया है।

सन् 1938 में शिवरात्रि के दिन बोलीं—''आज मुझे अच्छी तरह सजा दे।'' जब उन्हें सजाया गया तब बोलीं—''मेरा रथ आ गया है।''

उसी दिन ब्राह्म मुहूर्त में वे महाप्रयाण कर गयीं।

●

दुर्गा माँ

"माँ, यह साधु कई दिनों का भूखा है। क्या तुम इस संत को आज भोजन दोगी?"

बाहर दरवाजे की ओर से आवाज आयी। इस आह्वान को सुनते ही गृहस्वामिनी तुरत बाहर आयीं। उसने दरवाजे पर खड़े एक साधु को देखा। उन्हें प्रणाम करती हुई बोलीं—"यह तो मेरा अहोभाग्य है जो आज एक संत को अपने यहाँ भोजन कराऊँगी।"

बड़े आदर के साथ संत को वे घर के भीतर ले गयीं। अपने हाथों से उनके पैर धोये, फिर गमछे से पैर पोंछने के बाद उन्हें आसन पर बैठाकर भोजन की थाली लाने रसोईघर में चली गयीं।

भोजन से तृप्त होकर संत ने दोनों हाथ ऊपर उठाकर आशीर्वाद देते हुए कहा—"तुम्हारा कल्याण हो। सदा सुखी रहो।"

गृहस्वामिनी ने कहा—"महाराज, मैं तो वृद्ध हो गयी हूँ। जल्द ही भगवान् के दरबार में चली जाऊँगी। मेरी पुत्रवधू को आशीर्वाद दीजिए।"

संत ने पूछा—"क्या बात है माँ?"

गृहस्वामिनी की आकृति म्लान पड़ गयी। धीरे से बोलीं—"एक-एक करके चार बच्चे हुए। सभी को भगवान् ने बुला लिया। पता नहीं, भगवान् की क्या इच्छा है। जब उन्हें वापस ही ले लेना था तो देने की दरकार क्या थी? इस वजह से हमारा सारा परिवार संतप्त है। कम-से-कम एक बच्चे की माँ बनने का उसे सौभाग्य प्राप्त हो।"

गृहस्वामिनी के आग्रहपूर्ण वचन को सुनकर संत कुछ देर के लिए मौन हो गये। थोड़ी देर बाद अपनी आँखें खोलते हुए उन्होंने कहा—"माँ, इस बार जो संतान आ रही है, उसे भगवान् के नाम उत्सर्ग कर दो। भगवान् को जो कुछ समर्पण किया जाता है, उसका नाश नहीं होता, क्योंकि वह उनकी वस्तु होती है।"

"सच?"

संत ने कहा—"हाँ, माँ। प्रभु अपनी संपत्ति की रक्षा स्वयं करते हैं, क्योंकि वह उनका नैवेद्य होता है।"

गृहस्वामिनी ने कहा—"ठीक है, बाबा। इस बार जो संतान होगी, उसे मैं भगवान् युगलकिशोर के नाम समर्पित कर दूँगी। कम-से-कम वह जीवित तो रहेगी। यही हमारे लिए सुखकर होगा।"

बातचीत के सिलसिले में संत को जब यह ज्ञात हुआ कि अब जो संतान आ रही है, वह अष्टम है तब उन्होंने कहा—"अष्टम संतान वंश का नाम उज्ज्वल करती है। 'कुलं पवित्रं जननी कृतार्था' के अनुसार यह संतान सौभाग्यशाली होगी।"

साधु महाराज के जाने के बाद सास अपनी पुत्रवधू को लेकर चूर्णी नदी के किनारे स्थित युगलकिशोर मंदिर में गयीं। वहाँ उन्होंने विग्रह की पूजा करने के बाद प्रतिज्ञा की कि अगर लड़का हुआ तो उसे स्वामी विवेकानन्द को समर्पित कर दूँगी और अगर लड़की हुई तो अपनी लड़की (गौरी माँ) को सौंप दूँगी। भले ही वह संतान गृहस्थ न बने, पर जीवित तो रहेगी। उसे देख-देखकर हम संतोष करेंगे।

यथासमय विपिनबिहारी मुखर्जी की पत्नी ब्रजबाला को लड़की पैदा हुई। भगवान् युगलकिशोर के चरणों में समर्पित करने के कारण उसका नाम रखा गया—'युगलकिशोरी'।

❑ ❑ ❑

विपिनबिहारी के पिता रामयदु मुखर्जी शान्तिपुर के निवासी थे। यदुराम और उनकी पत्नी श्रीमती उज्ज्वलादेवी दोनों ही धार्मिक प्रवृत्ति तथा देव-द्विजों के प्रति भक्ति करते थे। इसी प्रकार अपर पक्ष अर्थात् ब्रजबाला के पिता पार्वतीचरण और उनकी पत्नी गिरिबाला देवी निष्ठावान्, भक्त और दयालु थे। यह परिवार कलकत्ता में रहता था।

गिरिबाला का एक और इतिहास है जिसे बहुत कम लोग जानते हैं। वे बंगाल की प्रथम महिला थीं जो शाक्त-संगीत की रचयित्री थीं। आपकी सारस्वत-साधना की प्रशंसा तत्कालीन मनीषियों ने की है। आपकी कविताएँ भक्तिमूलक ही नहीं,

ज्ञानमूलक थीं। गिरिबाला के कंठ से इनकी रचनाएँ सुनकर परमहंस रामकृष्णदेव भावविभोर हो उठते थे।

गिरिबाला की मझली लड़की का नाम मृड़ानी था। संन्यास-ग्रहण करने के बाद इनका नाम 'गौरी माँ'[1] हुआ। गिरिबाला की सबसे छोटी पुत्री का नाम ब्रजबाला था। इस प्रकार युगलकिशोरी की नानी गिरिबाला शाक्त संगीत की रचयिता, मौसी प्रसिद्ध महिला संत गौरी माँ थीं।

15 अक्टूबर, सन् 1896 ई० गुरुवार, महानवमी के दिन युगलकिशोरी का जन्म होने के कारण पहले इनका नाम नवदुर्गा रखा गया था। पुकारते समय 'नव' शब्द हटाकर दुर्गा के नाम से लोग पुकारते थे।

दुर्गा के जन्म के काफी पहले गौरी माँ ने अपनी बहन ब्रजबाला से कहा था—''बीजू (ब्रजबाला का घरेलू नाम), इस बार तुझे लड़की होगी। इस लड़की को मुझे दे देना।''

लड़की पैदा होने के कुछ दिनों बाद ब्रजबाला उसे लेकर श्री श्री शारदा माँ के पास आयी। उनके चरणों के पास लड़की को रखते हुए बोली—''माँ, यह तुम्हारी लड़की है।''

ब्रजबाला को विश्वास नहीं था कि यह लड़की बचेगी। जो माँ निरन्तर प्रसव के बाद अपनी संतानों को खो देती रही, उसका धैर्य समाप्त हो गया था। उन दिनों श्री श्री शारदा माँ पर महिलाएँ जान छिड़कती थीं। लोग उन्हें साक्षात् भगवती मानते थे। ब्रजबाला को दृढ़ विश्वास था कि अगर इस लड़की को माँ का आशीर्वाद प्राप्त हो गया तो इसे यमराज तक स्पर्श नहीं कर सकेंगे।

शारदामाता ने लड़की को गोद में उठाकर उसके सिर पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिया। ब्रजबाला का शंकित हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो उठा। उसे प्रतीत हुआ कि अब इस लड़की की अकाल-मृत्यु नहीं होगी।

दुर्गा जब ढाई वर्ष की हुई तभी ब्रजबाला का निधन हो गया। मातृहीना बालिका को उसके मामा अपने यहाँ ले आये। इस लड़की को देखते ही उसकी मौसी गौरी माँ समझ गयी थी कि यह लड़की आगे चलकर उनके कार्यों में सहायक बनेगी।

कुछ दिनों बाद गौरी माँ युगलकिशोरी को अपने आश्रम में ले आयीं और उसे देवी-देवियों का स्तोत्र पढ़कर सुनाने लगीं। इस प्रकार बचपन से ही उसमें धार्मिक भावनाओं का विकास प्रारंभ हुआ। गौरी माँ की देखरेख में वह क्रमशः बड़ी होने लगी।

समय का पक्षी गुजरता गया। अब युगलकिशोरी पाँच वर्ष की हो गयी। एक दिन गौरी माँ ने अपनी माँ गिरिबाला से कहा—''ब्रजबाला की लड़की पाँच वर्ष पूरे

---

1. 'गौरी माँ' का पूर्ण विवरण इसी खण्ड में है।

कर चुकी है। अब देर करना उचित नहीं है। लड़की की माँ वचन दे गयी है कि वह अपनी इस संतान को भगवान् के चरणों में समर्पित करेगी। अतएव अब उसके लिए हमें कुछ करना चाहिए।''

गिरिबाला ने पूछा—''सो तो ठीक है, पर अब तुम करना क्या चाहती हो?''

गौरी माँ ने कहा—''इस लड़की का विवाह पुरी के जगन्नाथजी के साथ होगा और वह भी बड़े समारोह के साथ।''

अपनी लड़की की बातें सुनकर गिरिबाला चौंक उठी। आज तक इस तरह की घटना कहीं हुई है? पाषाण-देवता के साथ एक मानवी का विवाह! कहीं मजाक तो नहीं कर रही हैं? ऐसा अद्‌भुत काण्ड तो उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। माँ होने पर भी गिरिबाला अपनी इस बेटी से यमराज की तरह डरती थी।

गौरी माँ के प्रताप को देखकर परमहंस रामकृष्ण के भक्त भी उन्हें 'माताजी' कहते थे। इनकी तेजस्विता देखकर स्वामी विवेकानन्द ने, जो उन दिनों अमेरिका में थे, अपने एक पत्र में लिखा था—'गौरी माँ कहाँ है? मुझे एक हजार गौरी माँ चाहिए। ठीक उसी प्रकार महती और चेतनादायिनी शक्तिवाली महिला।'

गिरिबाला ने दबी जबान से पूछा—''क्या पुरी के पंडा राजी होंगे?''

गौरी माँ ने कहा—''पुरी के पंडा राजी होंगे या नहीं, इसे मैं देख लूँगी। पहले तुम यह बताओ कि तुम अपनी इस नतिनी को जगन्नाथ देव के हाथ समर्पित करोगी या नहीं?''

गिरिबाला ने कहा—''माँ होकर जब मैंने एक बेटी यानी तुम्हें भगवान् के चरणों में समर्पित किया है तब नतिनी को समर्पित करने में आपत्ति क्यों करूँगी? लेकिन यह लड़की मेरी नहीं है। इसके लिए इसके पिता से अनुमति लेनी होगी। सुना है कि लड़की की दादी बड़े कड़े स्वभाव की हैं। पता नहीं, वे इस कार्य के लिए राजी होंगी या नहीं।''

गौरी माँ ने कहा—''इसके लिए चिन्ता करने की जरूरत नहीं। धीरे-धीरे सभी से बातें करूँगी। जब तक दुर्गा का विवाह जगन्नाथदेव से नहीं होगा तब तक यह भात नहीं खा सकेगी।''

इस बातचीत के कुछ दिनों बाद गौरी माँ शान्तिपुर गयीं और वहाँ दुर्गा के पिता से अपनी इच्छा प्रकट की। पिता को यह बात मालूम थी कि उनकी पत्नी ब्रजबाला इस लड़की को देवता के चरणों में समर्पित कर गयी हैं। लेकिन यहाँ समस्या दूसरी थी। जगन्नाथदेव से विवाह के प्रश्न पर वे 'हाँ-ना' करने में अपने को असमर्थ पाने लगे।

जब यह बात लड़की की दादी के पास पहुँची तो वे बुरी तरह चौंक उठीं। बोलीं—''यह कैसा तमाशा है? एक जीवित हाड़-मांसवाली अबोध लड़की के साथ मंदिर के विग्रह का विवाह? क्या कभी आज तक ऐसा कहीं हुआ है?''

गौरी माँ ने जवाब दिया—"हाँ, ऐसा हुआ है। पुरी में ऐसी कई घटनाएँ हो चुकी हैं।"

"सो तो ठीक है। आखिर ब्राह्मण-परिवार की लड़की है। जब सयानी हो जायगी तब तो उसका विवाह करना ही पड़ेगा, वरना समाज के लोग कहेंगे कि इसी बहाने एक लड़की के विवाह से मुक्ति पा गये।"

गौरी माँ आश्चर्य से बोलीं—"ब्राह्मण की लड़की का क्या दो बार विवाह होता है? आप यह क्यों भूल जाती हैं कि एक साधु तथा युगलकिशोर भगवान् के आगे प्रतिज्ञा कर चुकी हैं। अगर आप उस प्रतिज्ञा के अनुसार राजी नहीं होंगी तो इसका क्या परिणाम होगा, इस पर भी विचार कर लीजिएगा।"

गौरी माँ से सभी डरते थे। पता नहीं, क्रोध में आकर कौन-सा शाप दे दें। इससे अमंगल हो सकता है। ऐसे दुर्वासा से जान बचाना ठीक है। दादी तुरत राजी हो गयीं।

दादी को राजी होते देख दुर्गा के पिता से गौरी माँ ने कहा—"जबानी जमा-खर्च करने से काम नहीं चलेगा। मैं जाकर सारा इन्तजाम करती हूँ। विवाह की तिथि निश्चित करके तार भेजूँगी। आपको वहाँ उपस्थित रहकर कन्यादान करना होगा।"

शान्तिपुर से वापस आते ही गौरी माँ विवाह की सारी तैयारी करने लगीं। इस अवसर पर नववधू के लिए मामा, नानी, पिता तथा अन्य अनेक लोगों ने जेवर और उपहार दिये। श्री शारदा माँ ने एक बनारसी साड़ी, सिर पर लगनेवाला एक जेवर तथा जगन्नाथजी के लिए सिल्क का एक दुपट्टा दिया। इस प्रकार वधू और देव जामाता के लिए सारी सामग्री प्राप्त हो गयी।

शुभ दिन देखकर अधिकांश लोग पुरी के लिए रवाना हो गये। गौरी माँ को रह-रहकर आशंका होने लगी कि कहीं इस कार्य में पुरी के पण्डे विघ्न उपस्थित न करें। यही वजह है कि रवाना होने के पूर्व वे बंगाल के भाटपाड़ा तथा काशी के ब्राह्मणों से परामर्श कर आयी थीं।

पुरी आकर गौरी माँ गोविन्दचन्द्र पण्डा से मिलीं और उन्हें अपना उद्देश्य बताया। गोविन्दचन्द्र ने पुरी के तत्कालीन राजा गजपति मुकुन्ददेव से इस बारे में निवेदन किया।

इस प्रस्ताव को सुनते ही राजा साहब चौंक उठे। यह एक अद्‌भुत निवेदन था। स्वयं कोई निर्णय न लेकर उन्होंने अपने दीवान पर जिम्मेदारी सौंप दी। नतीजा यह हुआ कि मंदिर के पंडों ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया! विवाद बढ़ता गया।

पुरी की पंडित-मंडली और कन्या-पक्ष के लोगों में जमकर शास्त्रार्थ हुआ। वास्तव में यह एक अद्वितीय दृश्य था। अन्त में दोनों पक्षों में इस बात पर समझौता हुआ कि जगन्नाथदेव को एक माला पहनायी जाय। अगर वह माला अपने-आप रत्नवेदी पर गिर जायगी तो समझा जायगा कि देवता इस कन्या को पत्नी के रूप में

स्वीकार करना चाहते हैं तब विवाह-समारोह होगा, अन्यथा यह असंभव कांड नहीं हो सकता।

फूलों की एक माला लेकर एक पंडे ने जगन्नाथदेव के गले में डाल दी। दैवकृपा से कुछ ही क्षणों में वह माला टूटकर अपने-आप रत्नवेदी पर गिर पड़ी।

देवता को यह विवाह स्वीकार है, समझकर उपस्थित नागरिकों ने तुमुल ध्वनि की। कन्या-पक्ष के लोगों की आँखों में हर्ष के आँसू छलछला आये। लोगों ने कहा—"निस्सन्देह यह कन्या असाधारण है। यह जगन्नाथ प्रभु की शक्ति है।"

रत्नवेदी पर से माला उठाकर पंडा ने दुर्गा को देते हुए कहा—"प्रभु ने इस कन्या को स्वीकार कर लिया है। अब आप लोग सम्प्रदान कर सकते हैं। हम सभी आपके इस समारोह में सहयोग देंगे। पुरी के इतिहास की यह महान् घटना है।"

इस बहुचर्चित घटना को देखने के लिए पुरी के कोने-कोने से जनता आयी थी। वेदी के पास कन्या को बैठाया गया। श्री शारदामाता द्वारा प्रदत्त साड़ी, मुकुट तथा अलंकार पहनाये गये। कपोल पर चन्दन, गले में पुष्प-माला, पैरों में नूपुर आदि पहनाकर विवाह सम्पन्न कराया गया। पिता की अनुपस्थिति में नानी ने कन्यादान किया। इसके बाद रत्नवेदी के चारों ओर सप्तपदी के रूप में फेरी हुई।

इस विवाह के निमित्त अपार प्रसाद तैयार किया गया था। पुरोहित, पंडा, महात्मा तथा उपस्थित नागरिकों ने प्रसाद ग्रहण किया। इस अभिनव विवाह की चर्चा तेजी से हुई थी, फलस्वरूप दुर्गा को देखने के लिए लोगों की अपार भीड़ एकत्रित हो गयी थी। पुरी-नरेश ने गौरी माँ तथा दुर्गा को अपने महल में आने के लिए आमंत्रण भेजा। दीवान साहब स्वयं गाड़ी लेकर आये और आदरपूर्वक उन्हें महल में ले गये। राजा और रानी ने इस अवसर पर जगन्नाथजी की पत्नी को नाना-प्रकार के उपहार दिये।

इस घटना के बाद पंडों ने एक नया विवाद उपस्थित किया। उनका कहना था कि दुर्गा का विवाह जगन्नाथजी से हुआ है, अतएव नववधू को पुरी में रहना पड़ेगा। यही उनका वास्तविक घर है।

गौरी माँ बड़े पशोपेश में पड़ीं। उन्होंने इन पंडों को समझाया कि दुर्गा असामान्य लड़की है। अभी यह शास्त्र पढ़ेगी, मठाधीश बनेगी, नारी-जाति को शिक्षा देगी और लोग इसकी माँ के रूप में पूजा करेंगे। ऐसी हालत में यहाँ आजीवन कैसे रह सकती है? हाँ, यह ठीक है कि कन्या को प्रतिवर्ष यहाँ आना अवश्य पड़ेगा।

गौरी माँ की उपयुक्त सलाह को सुनकर पंडों ने फिर कोई जिद नहीं की। दुर्गा को लेकर वे सकुशल कलकत्ता लौट आयीं।

गौरी माँ की पालित कन्या का विवाह जगन्नाथजी से हो गया, यह समाचार सुनकर स्वामी विवेकानन्द बड़े प्रसन्न हुए। दुर्गा जब तीन साल की नन्हीं-सी थी

तभी से वह आश्रम में आती रही। स्वामी विवेकानन्द उसे खुकी (मुन्नी) के नाम से पुकारते थे, उसके साथ खेलते थे।

एक बार उसे कंधे पर बैठाकर स्वामीजी स्वयं उछल-कूद कर रहे थे। दुर्गा को इससे आनन्द मिल रहा था। वह किलकारियाँ मार रही थी। इस उछल-कूद के कारण उसके पैर रह-रहकर स्वामीजी के वक्ष:स्थल से टकरा रहे थे।

यह दृश्य देखकर गौरी माँ बोलीं—"यह क्या हो रहा है नरेन? मुन्नी के पैर तुम्हारी छाती से टकरा रहा है। यह गलत काम है।"

विवेकानन्द ने कहा—"इससे कोई अपराध नहीं होगा, गौरी माँ। आगे चलकर इन पैरों पर न जाने कितने लोग सिर झुकायेंगे।"

दुर्गा के प्रति स्वामी विवेकानन्द का असीम स्नेह था। उन्हें यह आभास हो गया था कि आगे चलकर यह लड़की तपस्विनी होगी। दुर्गा भविष्य में उच्च अध्ययन के लिए कहीं जाना चाहे तो उस निमित्त होनेवाले खर्च के कई हजार रुपये स्वामी शारदानन्दजी के पास उन्होंने जमा कर दिये थे। अक्सर देश या विदेश से जब वे लौटते तब दुर्गा के लिए एक-न-एक उपहार अवश्य लाते थे।

एक बार एक अजीब घटना हुई जिसके कारण श्री श्री माँ परेशान हो गयी थीं। दुर्गा को उसकी नानी प्राय: देवी-देवताओं की कहानियाँ सुनाया करती थीं। बातचीत के सिलसिले में एक दिन नानी कह बैठीं—"भक्ति से भगवान् मिलते हैं।"

इतना सुनना था कि दुर्गा पूछ बैठी—"भक्ति कहाँ मिलती है?"

अबोध बालिका के इस प्रश्न पर नानी ने मुस्कराकर कहा—"शारदामाता के पास है। उनसे माँगने पर मिल जायगी।"

बेचारी बालिका ने इसे गंभीरतापूर्वक लिया। उसे क्या मालूम कि परिहास किया गया है। उसने निश्चय किया कि कल भवानीपुर जाकर श्री शारदा माँ से भक्ति ले आऊँगी।

दूसरे दिन वह अपने भाई के साथ शारदा माँ के यहाँ पहुँची। उस समय शारदा माँ पूजा करने के बाद मंदिर से बाहर निकल रही थीं।

दुर्गा उन्हें प्रणाम करना भूल गयी। दौड़कर उनके पास जाकर उनका आँचल पकड़ती हुई बोली—"तुम्हारे पास भक्ति है, मुझे थोड़ा-सा दो।"

शारदा माता इस बात पर हँस पड़ी। उन्होंने पूछा—"वाह रे, यह तुझे किसने बताया कि मेरे पास भक्ति है?"

"नानी अम्मा ने कहा है।"

उस वक्त नानी अम्मा वहाँ मौजूद थीं। उन्होंने मुस्कराकर कहा—"कसकर माँ का आँचल पकड़ी रहना, बेटी। इन्हींके पास भक्ति है।"

दुर्गा ने कसकर आँचल पकड़ लिया और उनसे सटकर खड़ी हो गयी।

शारदा माँ ने कहा—''अच्छा, देती हूँ। पहले मेरी साड़ी तो छोड़ दे।''

इतना कहकर शारदामाता मंदिर के भीतर से प्रसाद में से जलेबी ले आयीं। उसे देकर बोली—''ले।''

दुर्गा को प्रसाद देना था कि उपस्थित सभी महिलाओं में इस बात पर होड़ लग गयी कि आज माँ प्रसाद के रूप में भक्ति बाँट रही हैं। जो जहाँ था, वहीं से दौड़ा आया। बड़ी मुश्किल से उस दिन उन्हें भक्तों से छुटकारा मिला।

शारदामाता दुर्गा का बहुत ध्यान रखती थीं। इस बात को सभी जानते थे। सन् 1905 की दुर्गा-पूजावाले दिन नानी अम्मा ने कहा—''दुर्गा, आज तू अपने दादा के साथ जाकर शारदामाता को प्रणाम कर आ।''

इस आदेश को पाकर वह फूली नहीं समाई। नैवेद्य के लिए फल और मीठा लेकर बड़े उत्साह के साथ शारदामाता के पास पहुँची। उसे देखते ही शारदामाता ने कहा—''आ गयी, बेटी? आ, आज तुझे दीक्षा दूँगी।''

दीक्षा मिलेगी सुनकर दुर्गा खुशी से भर उठी। भक्ति तो जलेबी के रूप में मिली थी और अब दीक्षा किस रूप में मिलेगी, यह जानने के लिए कौतूहलवश श्री माँ के पीछे-पीछे कमरे के भीतर आयी। श्री माँ के आदेशानुसार उसने सबसे पहले माँ के चरणों पर पुष्पांजलि दी। प्रणाम किया। बाद में माँ ने बीज मंत्र देकर उसे जप करने की विधि समझायी। थोड़ी देर बाद उसे प्रसाद खिलाने के पश्चात् श्री माँ ने कहा—''अब जा।''

इस घटना के कुछ दिनों बाद दुर्गा शारदामाता का दर्शन करने आयी। उसे आशीर्वाद देकर श्री माँ ने कहा—''फूलों की तरह पवित्र रहो।''

भगिनी निवेदिता वहाँ उपस्थित थीं। उन्होंने माँ से प्रश्न किया—''माताजी, मुझे एक बात का उत्तर देने की कृपा करें। आप जब किसी बालिका को आशीर्वाद देती हैं तब कहती हैं—फूलों की तरह पवित्र रहो। अन्य लोग कहते हैं—सुखी रहो।''

श्री माँ ने कहा—''बेटी, सुख का कोई मूल्य है? फूलों की तरह पवित्र रहने पर देवता की पूजा के काम आयेंगे। उनके चरणों की शोभा बनेगी। इससे जीवन धन्य हो जायेगा।''

❑ ❑ ❑

धीरे-धीरे समय गुजरता गया। इन दिनों युगलकिशोरी (दुर्गा) ग्यारह वर्ष की हो गयी है। उसके भरे-पूरे शरीर को देखकर घर के लोगों ने सोचा कि अब लड़की के हाथ पीले कर देने चाहिए। अगर इस वक्त इसका विवाह न किया गया तो यह भी गौरी माँ की तरह योगिनी बन जायगी।

इस बात की भनक मिलते ही गौरी माँ तुरत आयीं और फटकारती हुई बोलीं—''आप लोगों का दिमाग खराब हो गया है क्या? जगन्नाथदेव का सम्प्रदान करने के बाद इसे गृहस्थाश्रम में ले जाओगे? यह अधर्म है।''

विरोध करनेवालों ने कहा—''इसमें अधर्म कहाँ से आ गया? भगवान् तो संसार के पिता हैं, पर क्या मानव का वास्तविक पिता नहीं होता। ब्रज की गोपियों ने अपने को श्रीकृष्ण के निकट समर्पित किया था तो क्या वे उनके वास्तविक पति नहीं थे? शास्त्रों के अनुसार औरतों को स्वामी के आश्रय में रहना चाहिए। लिहाजा दुर्गा का वास्तविक विवाह करना अनिवार्य है।''

दुर्गा के पिता तथा मामा ने भी इस तर्क का समर्थन किया। अन्त में इन लोगों ने यह निश्चय किया कि लड़की को शान्तिपुर ले आया जाय। इन लोगों की दृढ़ धारणा थी कि गौरी माँ के कब्जे से लड़की का उद्धार करना साधारण बात नहीं है। किसीमें इतना साहस नहीं है जो उनका सामना कर सके।

दुर्गा के पिता गौरी माँ से दीक्षा ले चुके थे। इस दृष्टि से गुरु-चेला का सम्पर्क था। भक्ति के साथ-साथ भय का संयोग था। काफी ऊहापोह करने के बाद इस पक्ष के लोगों ने यह निश्चय किया कि कभी न कभी लड़की अकेले में होगी तब धीरे से उसे गायब कर दिया जायगा।

इस निश्चय के पश्चात् लोग गौरी माँ के पास निरन्तर आने-जाने लगे। गौरी माँ को संदेह हो गया। षड्यंत्र की गंध मिलते ही वे चिन्तित हो उठीं।

यह षड्यंत्र चल ही रहा था कि एक दिन गौरी माँ के भाई अविनाशचन्द्र आये और अपनी बहन पर बिगड़कर बोले—''तुम्हारा यह काम गलत है। कितने दिनों तक इसे छिपाकर रखोगी, कब तक इसकी पहरेदारी करोगी? अगर कहीं उन लोगों ने कानून का सहारा लिया तो लेने के देने पड़ जायेंगे। कभी इस ओर सोचा है?''

गौरी माँ ने कहा—''जब यही सब उन्हें करना था तब जगन्नाथदेव को समर्पण करने के पहले सोचना चाहिए था। मैं लड़की को वापस नहीं दूँगी। जिसे जो कुछ करना है, कर ले।''

''बात ठीक है, पर तुम यह क्यों नहीं सोचती कि समाज क्या कहेगा? लोग तो यही सोचेंगे कि इसी बहाने लोग लड़की के विवाह के झमेले से बच गये। मेरी बात मानो। जिनकी लड़की है, उन्हें वापस कर दो। वे जो करना चाहें, करें। झमेला समाप्त।''

गौरी माँ ने कहा—''दादा, तुम जो कह रहे हो, मैं मानती हूँ कि यह सही सलाह है। लेकिन दुर्गा असाधारण लड़की है। वह इस संसार में महान् कार्य करने आयी है। किसीकी गृहस्थी बसाने के लिए इसका जन्म नहीं हुआ है। हजारों लोग इसकी पूजा करेंगे।''

बहन की जिद के आगे हार मानकर अविनाशचन्द्र चले गये। उनके जाने के बाद एक दिन दुर्गा को लेकर गौरी माँ न जाने कहाँ गायब हो गयीं।

एक अर्से बाद वे वापस आयीं। एक दिन शारदामाता के पैरों की मालिश करती हुई बोलीं—"माँ, मैं गेरुआ वस्त्र पहनूँगी। मैं साधु बनूँगी। आपके दिये मंत्र का बराबर जाप कर रही हूँ, अब आपके द्वारा प्रदत्त वस्त्र पहनूँगी। मैं आप ही से संन्यास भी लूँगी।"

शारदामाता ने पास ही बैठी एक महिला से कहा—"अरी गुलाब, मुन्नी क्या कह रही है?"

कुछ देर बाद शारदामाता ने कहा—"हाँ, बेटी, मैं तुझे जरूर संन्यास दूँगी। पहले शुभ दिन ठीक कर लिया जाय।"

यह बात जब शरत् महाराज को मालूम हुई तब वे अत्यन्त प्रसन्न हो उठे। माताजी मुन्नी को संन्यास देंगी, इससे बढ़कर आनन्दपूर्ण घटना क्या हो सकती है। उन्होंने कहा—"मुन्नी के पिता से पहले अनुमति ले ली जाय। उनकी राय के बिना संन्यास देने पर झगड़ा खड़ा होगा और हमें परेशानी होगी।"

इस राय का समर्थन सभी लोगों ने किया। एक दिन गौरी माँ अपने साथ दुर्गा को लेकर उसके पिता के पास गयीं। गौरी माँ के कुछ कहने के पहले ही दुर्गा ने कहा—"मैं श्री श्री माँ से संन्यास लेना चाहती हूँ। आपके निकट आज्ञा लेने आयी हूँ।"

पुत्री की बातें सुनकर पिता हतप्रभ रह गये। कुछ देर तक वे एकटक दुर्गा को देखते रहे। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि लड़की इन वाक्यों को रटकर आयी है जबकि उनकी धारणा गलत थी। एकाएक उन्हें एक घटना याद आ गयी। दुर्गा आजकल उन्हें 'बाबा' कहकर सम्बोधन नहीं करती। कारण पूछने पर कहती है—'मेरे पिता तो बाबा विश्वनाथ और माँ उमादेवी हैं।' विपिनबाबू इस दर्द को भुला नहीं पा रहे थे।

विपिनबाबू ने कहा—"मैं तुम्हें अनुमति दो शर्तों पर दे सकता हूँ।"

"वह क्या?"

"पहला मेरे साथ एक ही पत्तल पर तुम्हें भोजन करना पड़ेगा।"

दुर्गा ने कहा—"मैं ब्रह्मचारिणी हूँ। किसी दूसरे के साथ एक पत्तल पर भोजन नहीं कर सकती।"

"मैं स्वयं शुद्धाचार से बनाऊँगा तब तो मेरे साथ खाओगी?"

"ठीक है।"

भोजन के पश्चात् पिता ने कहा—"मैं तुमसे कुछ प्रश्न पूछूँगा। उसका ठीक-ठीक उत्तर दोगी तो मैं अनुमति अवश्य दे दूँगा।"

पिताजी के इस सवाल पर दुर्गा चिन्तित हो उठी। पता नहीं, पिता कौन-सा प्रश्न कर बैठें।

ठीक इसी समय एक अलौकिक घटना हुई। दुर्गा ने देखा—उसके सामने एक दीर्घकाय व्यक्ति खड़ा है। उसके गले में जनेऊ है। उस छाया-मूर्ति ने इशारे से कहा—"मैं तेरा पितामह हूँ। तू घबरा मत। इसके सभी प्रश्नों का उत्तर मैं बता दूँगा।"

इस आश्वासन को सुनकर दुर्गा को ढाढ़स उत्पन्न हुआ। पिता एक के बाद एक करके प्रश्न करते गये और दुर्गा उनके सभी प्रश्नों का उत्तर देती गयी। इस प्रकार वह अपनी परीक्षा में सकुशल उत्तीर्ण हो गयी। इसके बाद उसने भूमिष्ठ होकर पिता को प्रणाम किया।

दुर्गा ने कहा—"अब मुझे आज्ञा दीजिए, पिताजी।"

इस सम्बोधन को सुनकर पितृ-हृदय गद्गद हो उठा और उन्होंने सहर्ष अनुमति दे दी।

❑ ❑ ❑

बाराकपुर स्थित आश्रम के घाट पर आसपास की महिलाएँ आकर स्नान करती हैं और पीने के लिए पानी घड़े में भरकर ले जाती हैं। दो-तीन बहुएँ स्नान करने के पश्चात् घर जाने लगीं। इनमें से एक महिला अचानक जमीन पर धम्म से बैठ गयी और अनाप-शनाप बकने लगी। यह दृश्य देखकर शेष महिलाएँ घबरा गयीं।

अचानक एक बहू ने न जाने क्या सोचा और तुरत आश्रम में जाकर गौरी माँ को इस घटना की सूचना दी। बोली—"गौरी माँ, जल्दी आओ। मेरी सहेली को अचानक न जाने क्या हो गया है।"

गौरी माँ घटनास्थल पर आयीं। बहू की स्थिति देखकर समझ गयीं कि बाल खुले हुए हैं, शाम का समय है, जरूर किसीकी अशुभ दृष्टि पड़ गयी है। उस स्थान पर आग जलाकर उसमें मिर्च, सरसों और न जाने क्या-क्या चीजें डालकर लाठी से पीटने लगीं। इस क्रिया से कोई लाभ नहीं हुआ। बहू पूर्ववत् बक-झक करती रही। यह देखकर गौरी माँ राम-नाम-कीर्तन करने लगीं।

ठीक उसी समय एक छाया-मूर्ति सामने आयी। उसने पूछा—"तुम यह सब क्या कर रही हो?"

गौरी माँ ने उत्तर दिया—"आप कौन हैं? इस बहू को क्यों कष्ट दे रहे हैं?"

छाया-मूर्ति ने कहा—"मैं पंचवटी के नीचे बैठा जप कर रहा था। इसने अपना अशुद्ध वस्त्र मेरे शरीर से स्पर्श करा दिया। आँचल की बहार दिखाती है।"

गौरी माँ समझ गयीं कि अदृश्य जीव भूत-प्रेत नहीं है। उन्होंने पूछा—"आप कौन हैं?"

छाया-मूर्ति ने कहा—"मैं महावीर हूँ। मैं यहाँ जप कर रहा था।"

गौरी माँ ने विनयपूर्वक कहा—"प्रभो, बहू से अनजाने में गलती हो गयी। इस बुद्धिहीन को कृपया क्षमा कर दें।"

महावीर ने कहा—''तुम्हारे अनुरोध पर इसे क्षमा तो कर दूँगा, पर इसके पहले यह स्नान कर भीगे वस्त्रों में आये और यहाँ लोट लगाये। जमीन में नाक रगड़कर प्रार्थना करे।''

बहू ने ऐसा ही किया।

गौरी माँ ने कहा—''अब आप प्रसन्न हो गये हैं तो कृपया कुछ ग्रहण करने का कष्ट करें।''

महावीर ने कहा—''तुम्हारे यहाँ नया गुड़ हो तो केले के पत्ते पर रख दो।''

गौरी माँ ने दुर्गा से कहा—''जा, जल्दी से केले का पत्ता, गुड़ की गगरी और एक लोटा गंगा-जल लेती आ।''

दुर्गा सारा सामान ले आयी। गौरी माँ केले के पत्ते पर गुड़ रखती हुई बोली—''प्रभो, अब आप इसे ग्रहण करने की कृपा करें।''

दुर्गा ने अपने संस्मरण में लिखा है—''सभी भयभीत थे। चारों ओर अनजाना भय व्याप्त था। महावीरजी की आवाजें हमें सुनाई नहीं दे रही थीं और न उन्हें देख पा रहे थे, पर केले के पत्ते पर जब-जब गुड़ की भेली रखी गयी तब-तब गायब होती गयी। पूरी गगरी खाली हो गयी।'' गौरी माँ की देखादेखी सभी लोगों ने भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया।

❑ ❑ ❑

इस घटना के कई वर्ष बाद की बात है।

अंतिम बार जयरामबाटी जाने के पूर्व शारदामाता ने दुर्गा को अपने पास बुलाकर बहुत प्यार किया। अपने गले की रुद्राक्ष-माला दिखाती हुई बोलीं—''यह ठाकुर (परमहंस रामकृष्ण) की जपवाली माला है। षोड़शी-पूजा के समय उन्होंने मुझे यह माला दी थी। उसी समय से यह पवित्र माला मेरे गले में है। आज मैं इसे तुझे दे रही हूँ। पता नहीं, मेरे निधन के बाद किसके हाथ लग जाय और इसकी मर्यादा नष्ट हो जाय, इसीलिए तुझे दे रही हूँ। यह सामान्य वस्तु नहीं है, सिद्ध वस्तु है। जब तेरा मन अशान्त हो, इसे अपने हृदय पर रख लेना।''

शारदा माँ से माला लेकर उसे पहनते ही दुर्गा को लगा जैसे तड़ित्-वेग से उसके सारे शरीर में विद्युत्-प्रवाह हुआ हो। यह देखकर माँ ने उसके गले से माला को निकालकर उसके ही आँचल में बाँध दी।

आगे माँ ने कहा—''भविष्य में जब कोई व्यक्ति तेरे सामने आयेगा तब उसका चेहरा देखकर उसके जीवन के रहस्यों को अपने-आप जान लेगी। तेरी आँखों के सामने अपने-आप सारी घटनाएँ तैर जायेंगी। उनका आधार समझकर तू बीज का निर्णय कर लेगी।''

माँ के इस आशीर्वाद को पाकर दुर्गा इतनी गद्‌गद हो गयी कि तुरत भूमिष्ठ होकर उसने माँ को प्रणाम किया। माँ स्नेह से उसे गले लगाते हुए सिर पर हाथ फेरती रही।

सन् 1938 ई० का जनवरी माह। अमावस्या की काली रात थी। सहसा दुर्गा को अनुभव हुआ कि गौरी माँ के कमरे में कोई अपरिचित व्यक्ति आया है। पिछले कुछ दिनों से वे अस्वस्थ हैं। चिकित्सा हो रही है, पर स्वास्थ्य में कोई सुधार नहीं हो रहा है।

दुर्गा ने आकर देखा—एक व्यक्ति गौरी माँ को लेकर जा रहा है। दुर्गा ने प्रश्न किया—"आप मेरी माँ को लेकर कहाँ जा रहे हैं?"

वह व्यक्ति निरुत्तर रहा। पुनः दुर्गा ने गौरी माँ से पूछा—"आप हम लोगों को छोड़कर कहाँ जा रही हैं?"

गौरी माँ ने कहा—"ये स्वर्ग के देवता हैं। मुझे लेने आये हैं।"

दुर्गा ने कहा—"आप इनके साथ नहीं जा सकतीं। मैं जाने नहीं दूँगी।"

आगन्तुक देवता मुस्कराते हुए चले गये। दूसरे दिन सुबह गौरी माँ ने दुर्गा को बुलाकर कहा—"कल रात को इस प्रकार का सपना देखती रही।"

यह सुनकर दुर्गा मन ही मन भयभीत हो उठी। संन्यासियों के देहावसान के बाद जिस प्रकार भंडारा होता है, ठीक उसी प्रकार का भंडारा हुआ। गौरी माँ के आदेशानुसार कुमारी-पूजा हुई। कुछ दिनों बाद उनकी हालत सुधरने लगी।

पुनः 1 मार्च, मंगल को स्थिति चिन्ताजनक हो गयी। दूसरे दिन बुधवार को रात 8 बजे उनका निधन हो गया।

गौरी माँ के निधन का समाचार पाकर उनके अगणित भक्त आश्रम में आये। काशीपुर स्थित श्री रामकृष्ण महाश्मशान में उनका शव-दाह किया गया। इसके पूर्व श्री श्री माँ का निधन हो गया था। गौरी माँ के निधन के बाद दुर्गा ने पहले-पहल अनुभव किया कि आज वह मातृहीना हो गयी है।

इस घटना के बाद दुर्गा माँ भारत के तमाम तीर्थस्थानों का दर्शन करने के लिए निकल पड़ीं। इस बीच वह कठोर श्रम करके हिन्दी, संस्कृत, बंगला तथा अंग्रेजी का अध्ययन करती रहीं, परीक्षाएँ देती रहीं। यह सब करते हुए श्री श्री माँ के दिये बीज-मंत्र का बराबर जप करती रहीं। वास्तव में दुर्गा एक अद्‌भुत महिला थीं।

उन्होंने भारत के विभिन्न स्थानों में आश्रम बनवाकर बालिकाओं को शिक्षा तथा साधना के लिए प्रेरित किया। आपकी समकालीन अनेक साहित्यिक महिलाएँ आपके आदर्श-जीवन, साधना तथा कार्यों के प्रति आकृष्ट होकर आपके सम्पर्क में आयीं और लाभ उठाया।

इनमें सर्वश्री निरुपमा देवी, आशापूर्णादेवी के अलावा पुरुषों में महामहोपाध्याय प्रमथनाथ तर्कभूषण, महामहोपाध्याय कालीपद तर्काचार्य,

डॉ० वी०के०आर०वी० राव, पी० शेषाद्री, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, श्री श्री जीव न्यायतीर्थ, सर मन्मथनाथ मुखोपाध्याय, प्रोफेसर हरिपद भारती, स्वामी शारदानन्द आदि प्रमुख थे।

इन कार्यों के कारण युगलकिशोरी, नवदुर्गा और दुर्गा के बदले दुर्गा माँ के रूप में वे प्रतिष्ठित हो गयीं। दुर्गा माँ की मौसी गौरी माँ किंचित् कड़े स्वभाव की महिला थीं, पर दुर्गा माँ को देखने पर ऐसा लगता था जैसे वे अनेक संतानों की जननी हैं। उनके चेहरे पर बंगाल की चिरन्तन मातृ-सुलभ भावना सर्वदा झलकती थी। उनकी सौजन्यता, सौम्यता सहज ही भक्तों को आकृष्ट कर लेती थी। इनके वात्सल्य के प्रति आकर्षित होकर सभी लोग इन्हें 'दुर्गा माँ' कहते थे। संभवतः इनमें यह गुण शारदा माँ की कृपा से प्राप्त हुआ था।

इन दिनों दुर्गा माँ अपने जीवन के चौंतीस सोपानों को पार कर चुकी थीं। अपने महान् गुरु के निर्देशानुसार दीक्षा-प्रार्थियों को दीक्षा देने लगी थीं। दुर्गा माँ की ख्याति धीरे-धीरे बढ़ती गयी।

सन् 1930 में संपूर्ण भारत अशान्त हो उठा। बंगाल में क्रान्तिकारियों का विस्तार हो रहा था। डलहौजी में कलकत्ता के पुलिस कमिश्नर टेगार्ट की हत्या करने के प्रयत्न में नगेन्द्रनाथ राय के पुत्र गोविन्दचन्द्र तथा भतीजे नारायणचन्द्र के नाम बिना जमानती वारंट जारी हो गया था। नारायणचन्द्र राय को गिरफ्तार कर उन्हें कालापानी भेज दिया गया। गोविन्दचन्द्र अभी तक फरार थे।

इन समाचारों से घबराकर नारायणचन्द्र के पिता डॉ० क्षेत्रनाथ राय तुरत गौरी माँ की शरण में आकर रोने लगे।

सारी बातें सुनने के बाद दुर्गा माँ ने कहा—"रोने की जरूरत नहीं है। तुम्हारे दोनों पुत्र सकुशल वापस आ जायेंगे। केवल कुछ भोग-दण्ड है। वे दोनों इसी आश्रम में आकर प्रसाद ग्रहण करेंगे।"

दुर्गा माँ के आश्वासन पर उन्हें विश्वास नहीं हुआ और न उनका हृदय शान्त हुआ। क्षेत्रनाथ राय को अपने पुत्र की वापसी के लिए नौ वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। गोविन्दचन्द्र के पिता नगेन्द्रनाथ राय जरा गंभीर स्वभाव के थे। वे अहरह अपने पुत्र के बारे में यही सोचते रहे कि मेरा बेटा कहाँ, किन परिस्थितियों में जीवनयापन कर रहा होगा। वे दीर्घ सत्रह वर्ष तक मानसिक पीड़ा से त्रस्त रहे।

इस बीच देश स्वतंत्र हुआ। नेहरूजी का मंत्रिमंडल बना। उन दिनों नगेन्द्रनाथ राय नवद्वीप में थे। अचानक एक दिन एक संन्यासी ने आकर उन्हें प्रणाम किया। इसके बाद उनके चरणों पर सिर रखते हुए कहा—"पिताजी।"

पिता-पुत्र के मिलन का यह दृश्य अद्भुत था। पूरे राय-परिवार में उस दिन हर्ष की लहर दौड़ गयी थी।

अधिकतर संत अपने शिष्यों तथा भक्तों को जप या भजन करने की आज्ञा देते हैं, क्योंकि सभी योग-साधना नहीं कर पाते। उनके लिए संभव भी नहीं होता। योगी पात्र की योग्यता देखकर प्राणायाम और योग के नियम बताते हैं। बीज-मंत्र देकर उसे सिद्ध करने का उपाय बताते हैं। इसी परम्परा में दुर्गा माँ अपने शिष्यों को कहा करती थीं—जपात् सिद्धिः। महानिशा में जप करने से सिद्धि प्राप्त होती है।

ऐसे कुछ उपयुक्त भक्तों को वे दीपावली की अमावस्या के दिन श्मशान में जाकर जप करने की सलाह देती थीं। जो लोग साहस के साथ ऐसा करने को प्रस्तुत हो जाते, उनसे कहतीं—''एक ही आसन में जप करना। सोना नहीं। आसन छोड़कर कहीं जाना नहीं। सूर्योदय होने पर आसन छोड़ना। तब गंगा-स्नान करके यहाँ आना। मैं तुम्हारे लिए प्रसाद का प्रबंध करके रखूँगी।''

कुछ लोगों को माला जपने का आदेश देकर कहतीं—''जप तो शुचि-अशुचि दशा में या चलते-फिरते किया जा सकता है। अगर संख्या की गणना करनी है तब आसन पर बैठकर करनी चाहिए। आसन शुद्ध हो और शुद्धाचार से जप करने पर इष्ट-सिद्धि होती है। जप आध्यात्मिक मार्ग को प्रशस्त नहीं करता बल्कि रोग-शोक और संकट को भी दूर करता है। संकट के वक्त अधिक जप करना चाहिए।''

एक बार मायादेवी नामक महिला ने दुर्गा माँ से कहा—''माँ, आज तक मेरी दीक्षा नहीं हुई है। आप मुझे दीक्षा दीजिए।''

माँ ने कहा—''तुम्हें इसी आश्रम में दीक्षा दूँगी।''

''कब आऊँ?''

''अगले शनिवार को आकर पता लगाना कि फिर कब आना है। फोन करके पूछ सकती हो।''

माया ने कहा—''नहीं, माँ! मैं स्वयं आऊँगी।''

''नहीं, फोन करना।''

मायादेवी ने सोचा—यहाँ आकर पूछ लूँगी। फोन पर कहीं सही जवाब न मिला तो आना ही पड़ेगा।

तभी दुर्गा माँ ने कहा—''फोन करना, बेटी।''

शनिवार के दिन फोन करने के बदले ज्यों ही वह आश्रम जाने के लिए घर से निकली त्यों ही उसने एक भयावह दृश्य देखा। चारों ओर ट्राम-बस जलाये जा रहे हैं। जनता क्रोध से पागल हो गयी है। ऐसी दशा में आश्रम तक जाना कठिन है। अन्त में उन्हें फोन का सहारा लेना पड़ा।

इस प्रकार की अनेक घटनाएँ अनेक भक्तों के साथ हुई हैं। दुर्गा माँ के प्रति साधारण तौर पर लोग भक्ति इसलिए करते थे कि उनमें मातृसुलभ भावना अत्यधिक थी। जिस प्रकार माँ अपनी संतानों को स्नेह और ममता देती हैं, ठीक उसी प्रकार वे

प्रत्येक छोटे-बड़े को अपने मधुर व्यवहार से अपना लेती थीं। भारतीय योगियों की तरह दुर्गा माँ भी अपने भक्तों के बारे में पूर्व जानकारी प्राप्त कर लेती थीं और सर्वदा अपनी साधना-शक्ति के माध्यम से सहायता करती थीं। इसी कारण वे अपने भक्तों में काफी लोकप्रिय थीं।

एक विशेषता उनमें और थी। वे आजीवन पुरी के जगन्नाथजी को अपना पति मानती हुई उनकी पूजा करती थीं। मंदिर में जाने के पूर्व नववधू की तरह साज-शृंगार कर दर्शन करती थीं।

शारदा माँ से बीज-मंत्र लेने के कारण वे परमहंस रामकृष्णदेव की भावधारा को सर्वदा अक्षुण्ण बनाये रखती थीं। रामकृष्णदेव का मुख्य उद्देश्य था—मानव का कल्याण करना। अपने जीवन को तुच्छ समझकर आर्त-पीड़ित मानव की सेवा करने का अर्थ है—नारायण की पूजा।

इस भावना का पालन वे चुपचाप बिना किसी प्रचार के करती रहीं।

सन् 1963 ई० में दुर्गा-पूजा का आयोजन प्रतिवर्ष की भाँति किया जा रहा था। इस वर्ष पंडितों में मतैक्य न होने के कारण भारत में दो बार दुर्गा-पूजा हुई। प्रथम बार की पूजा सकुशल समाप्त हो गयी थी। जब द्वितीय बार की पूजा प्रारंभ हुई तब माँ अचानक बीमार पड़ गयीं।

अस्वस्थ रहते हुए भी वे पूजा के आयोजन में सहयोग देती रहीं। बाद में अत्यधिक श्रम करने के कारण उन्हें तेज बुखार आ गया। इस संकट को दूर करने के लिए डॉक्टरों की सहायता ली गयी। दवा-इंजेक्शन आदि का उपयोग हुआ।

दुर्गा माँ ने हँसकर कहा—"अब कुछ नहीं होगा। समय आ गया है।"

14 नवम्बर, सन् 1963 को सबेरे स्नान करने के बाद वे पूजा-भोग, आरती में भाग लेती रहीं। इसके बाद माला लेकर जप करने लगीं। लड़कियाँ उनके सामने बैठकर ग्रंथ-पाठ करने लगीं।

दुर्गा को समझते देर नहीं लगी कि अब उनका जीवन-दीप बुझनेवाला है। चुपचाप कमरे के चारों ओर टँगे चित्रों को देखती हुई बोलीं—"माँ त्रिपुरसुन्दरी।"

इसके आगे और कुछ बोल नहीं सकीं। उनका मस्तक एक ओर लुढ़क गया। पाठ करनेवाली लड़कियों की चीत्कार सुनकर सभी आश्रमवासी दौड़े आये। उन्होंने भारी मन से देखा—माँ अनन्तलोक चली गयी हैं।

●

गोपाल की माँ

गोपाल की माँ का संपूर्ण जीवन बंगाल की विधवा महिला का प्रत्यक्ष उदाहरण है। कट्टरता की चरम सीमा, मातृत्व और अगाध स्नेह से परिपूर्ण, देव-द्विजों के प्रति असीम भक्ति तथा वार्द्धक्य-दोषों से मंडित।

नाम था—अघोरमणि देवी। श्री काशीनाथ घोषा बहुत ही गरीब ब्राह्मण थे। कामारहाटी में यजमानी करके गृहस्थी चलाते थे। प्राचीन परम्परा के अनुसार अघोरमणि का जब विवाह हुआ तब उनकी उम्र नौ वर्ष थी। विवाह के अवसर पर एक बार पति के घर गयीं। इसके बाद पुनः जाने का अवसर नहीं मिला। चार वर्ष बाद किशोरावस्था के प्रारंभ में ही विधवा होकर पिता के घर रहने लगीं। कद में नाटी, साँवला रंग और गठा हुआ शरीर था। परमहंस रामकृष्ण से चौदह वर्ष बड़ी थीं।

कामारहाटी में श्री गोविन्दचन्द्र दत्ता की ठाकुरबाड़ी थी जहाँ उनकी विधवा पत्नी श्रीमती दत्ता रहती थीं। एक ही गाँव में रहने के कारण श्रीमती दत्ता और अघोरमणि में मैत्री हो गयी थी। ठाकुरबाड़ी में श्री राधाकृष्ण की युगल-मूर्ति थी। पहले अघोरमणि के भाई नीलमाधवजी यहाँ पूजा करते थे और अब स्वयं दत्ता-गृहिणी करती हैं। श्रीमती दत्ता अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति की थीं। एक दिन अघोरमणि ने

उनसे कहा कि आपका मकान काफी बड़ा है। मुझे रहने के लिए एक कमरा अपने यहाँ दे दीजिए तो अच्छा हो। अपने घर में जप-तप करने में असुविधा होती है।

श्रीमती दत्ता ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। वे अघोरमणि की प्रकृति और प्रवृत्ति से अच्छी तरह परिचित थीं। श्रीमती दत्ता की ठाकुरबाड़ी में आकर अघोरमणि काफी प्रसन्न हुईं। गंगा-किनारे भवन था। बगल में मंदिर, बाग और शान्त परिवेंश। कमरे की तीनों खिड़कियाँ खोल देने पर गंगा का मनोहारी दृश्य दिखाई देता था। अघोरमणि की जरूरतें भी कम थीं। बाग से सूखे पत्ते और छोटी-मोटी लकड़ियाँ बीन लातीं और आलू-करैला उबालतीं। इसके बाद भात-दाल के साथ भोजन करतीं।

ससुराल से प्राप्त जमीन तथा अन्य सामग्रियों को बेचकर जो कुछ रुपये मिले थे, उसे श्रीमती दत्ता के पास जमा करने पर उसके सूद से अपना निर्वाह करती थीं। इससे पहले ही ससुराल के कुलगुरु से दीक्षा ले चुकी थीं। सबेरे गंगा में और शाम को तालाब में नहाना। स्नान के बाद बेल के पेड़ के नीचे बैठकर कुछ देर ध्यान करतीं और शाम को मंदिर के बरामदे में जप। दिन में एक-दो बार अपने पिताजी वाले मकान में चली जाती थीं। श्रीमत्ती दत्ता से प्रेम रहने के कारण मंदिर का भी छोटा-मोटा काम कर देती थीं।

रात को दो बजे उठकर स्नान के पश्चात् सुबह आठ बजे तक जप-पूजा-ध्यान करतीं। इसके बाद मंदिर की सफाई, बासन माँजना, फूल चुनना, चन्दन घिसना आदि काम करने के पश्चात् भोजन बनातीं। केले के पत्ते पर देवता को भोग चढ़ाने के बाद स्वयं खाती थीं। भोजन के पश्चात् थोड़ी देर विश्राम, फिर जप और शाम को मंदिर में पूजा, आरती के बाद पुनः साधना में मगंन हो जातीं।

घर के लिए छह महीने का राशन, मसाला आदि एक साथ खरीद लेती थीं। केवल तरकारी के लिए सप्ताह में एक दिन हाट जाती थीं। बगीचे में लगे पेड़ों से नारियल तोड़कर लड्डू बनाकर रख देती थीं जिसे रात को खाकर सो जाती थीं। यही थी उनकी दिनचर्या। इस मंदिर में लगभग तीस वर्ष तक इसी तरह जीवन व्यतीत करती हुई वे साधना करती रहीं।

सन् 1884 ई० की बात है। अगहन का महीना था। श्रीमती दत्ता के मन में आया कि दक्षिणेश्वर में रहने वाले उस साधु का दर्शन किया जाय जिनकी चर्चा आजकल बहुत हो रही है। उस समय तक कलकत्ता तथा आसपास के क्षेत्रों में परमहंसजी की चर्चा भक्तों में फैल गयी थी। कामारहाटी से दक्षिणेश्वर की दूरी नाव द्वारा केवल तीन मील के लगभग थी।

श्रीमती दत्ता के साथ अघोरमणि तथा कामिनी नामक एक महिला आयी थीं। कौतूहल के साथ वे चारों ओर देखने लगीं। वहाँ परमहंसजी के कुछ शिष्य रहते थे।

एक युवक का परिचय देते हुए उन्होंने कहा—"ये हैं शरत् महाराज। संन्यासी-नाम है—शारदानन्द।"

बालिका-सुलभ हँसी हँसकर अघोरमणि ने कहा—"अरी माँ, तुम तो गिरीश के लड़के हो न? तुम तो बेटा, अपने घर के हो। गिरीश का लड़का भगत बन गया। गोपाल अब किसीको नहीं छोड़ेगा। सभी लोगों को अपने पास खींच लेगा। बड़ा अच्छा है। पहले तुम्हारे साथ मायिक सम्बन्ध था, अब तो उससे अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। भगवान् के प्रति आस्थावान् हो, गोपाल की खूब सेवा करो। इससे यह काल और परकाल दोनों सुधर जायँगे।"

इसके बाद सभी लोग परमहंसजी के कमरे में उनका दर्शन करने आये। आदत के अनुसार रामकृष्णजी ने सभी को प्रेम से बैठाया। देर तक उपदेश देते रहे। यहाँ तक कि भजन भी गाते रहे। परमहंस का सान्निध्य इतना आकर्षक और भावमय लगा कि दत्ता-गृहिणी ने कहा—"बाबा, एक बार मेरी कुटिया को चरण-धूलि से पवित्र करने की कृपा अवश्य करें।"

परमहंसजी ने इस निमंत्रण को तुरत स्वीकार कर लिया। वे अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति से यह जान चुके थे कि दत्ता-गृहिणी और साथ की दोनों महिलाएँ अत्यन्त पवित्र हैं। उनके सामने ही उनकी प्रशंसा करते हुए कहा था—"वाह, आँख-मुँह के भाव बहुत सुन्दर हैं, भाव-भक्ति से सराबोर हैं, आँखें कितनी प्रेममय हैं। तिलक भी कितना सुन्दर है।" परमहंसजी के कहने का आशय यह था कि इनमें कृत्रिमता कुछ भी नहीं है।

जब महिलाएँ वापस जाने के लिए बिदा लेने लगीं तब परमहंसजी ने कहा—"अजी सुनती हो, जब इच्छा हो तब यहाँ चली आना। तुम लोगों के आने से मुझे प्रसन्नता होगी।"

वापस लौटते समय अघोरमणि ने सोचा—साधु बाबा अच्छे आदमी हैं, वास्तविक साधु हैं। मौका मिलने पर इनके पास पुनः आऊँगी।

इस बेचारी को क्या पता कि साधु बाबा अच्छे आधारों को बुरी तरह आकर्षित करते हैं। जिसे आकर्षित करते हैं, वह इस तरह बेचैन हो जाता है कि चुम्बक की तरह अपने-आप खींचा चला आता है। अघोरमणि की भी वही स्थिति हुई। एक दिन जब वे जप कर रही थीं तब उन्हें अनुभव हुआ कि एक बार उस साधु के पास चलना चाहिए। अकेली जाऊँगी। साथ में भीड़भाड़ रहने पर जी खोलकर बातें नहीं हो सकेंगी।

आखिर एक दिन दो पैसे का संदेश (छेने की मिठाई) खरीदकर पैदल ही दक्षिणेश्वर चली आयीं। इन्हें देखते ही रामकृष्णजी ने कहा—"आ गयी? मेरे लिए क्या लायी हो, दो।"

यह बात सुनते ही अघोरमणि हतबुद्धि हो गयी। उसने देखा कि साधु के पास न जाने कितनी अच्छी मिठाइयाँ रखी हुई हैं। सभी भक्त लोग बैठे हैं। इन मिठाइयों के आगे अपना गंदा संदेश कैसे दूँ। उसे बड़ा संकोच होने लगा। तभी रामकृष्णजी ने कहा—"जब ले आयी हो तब देती क्यों नहीं?"

बाप रे, यह कैसा साधु है। सामने इतनी मिठाइयाँ रखी हैं, पर मेरी मिठाई के लिए जिद कर रहा है। इन बातों को सोचती हुई उसने अपनी मिठाई दे दी।

रामकृष्णजी बड़े आनन्द से खाते हुए बोले—"तुम आगे से बाजार से खरीदकर कुछ मत लाना। घर पर नारियल के लड्डू बनाती हो, उसीमें से दो-चार लेती आना। अगर यह संभव न हो तो जिस दिन चच्चड़ी (एक तरह की तरकारी जिसमें हर तरह की तरकारियाँ रहती हैं) बनाती हो, वही लेती आना। तुम्हारे हाथ की बनी तरकारी खाने का जी चाहता है।"

अघोरमणि ने सोचा—यह कैसा साधु है, रे बाबा? केवल खाने-पीने की बातचीत। मैं ठहरी गरीब, यह सब कैसे लाऊँगी और इस उम्र में इतनी दूर कैसे लाऊँगी? धत्, अब मैं नहीं आऊँगी। मैं तो साधु-दर्शन करने और धर्म-कर्म, ठाकुर-देवता की बातें सुनने आयी थीं, पर यहाँ तो सिर्फ खाने-पीने की बात हो रही है।

झुँझलाकर ब्राह्मणी मंदिर से बाहर निकलने लगी। चौखट तक पहुँचते ही लगा जैसे पीछे से कोई अदृश्य शक्ति खींच रही है। पैर आगे बढ़ नहीं पा रहे हैं। कुछ देर तक वह परेशान होने के बाद जबरन मन को कड़ा करके अपने घर चली गयी। इस घटना के कई दिनों बाद जब एक दिन अघोरमणि 'चच्चड़ी' बनाने लगी तब उन्हें ध्यान आया कि दक्षिणेश्वर के साधु ने माँगा था। शायद उन्हें कोई चच्चड़ी बनाकर देता न होगा। मीठा-नमकीन से कहीं मन भरता है। आहा, उसकी साध पूरी कर आऊँ।

ठाकुर रामकृष्ण चच्चड़ी खाते हुए बोले—"वाह, यह तो अमृत है अमृत। तुम्हारे हाथ की बनी चच्चड़ी का स्वाद कभी न भुला सकूँगा। ऐसी चच्चड़ी कभी नहीं खायी।"

अघोरमणि ने सोचा—मैं दरिद्र-कंगला हूँ, इसलिए मुझे प्रसन्न करने के निमित्त साधुजी ऐसा कह रहे हैं। न ठीक से मसाला है और न तेल। मुझे खुश करने के लिए झूठी प्रशंसा कर रहे हैं। यह सब सोचने पर भी अघोरमणि लगातार तीन-चार माह तक चच्चड़ी, लड्डू आदि परमहंसजी के लिए लाती रहीं।

पुनः मन में बार-बार यही विचार आने लगा—खाते तो प्रेम से हैं, पर हरदम कहते हैं कि कलमी साग की चच्चड़ी लाना, कभी सुसनी की साग की भुजिया लाना। बड़े लालची साधु हैं। सिर्फ यह लाना, वह लाना। खाने-पीने के अलावा अन्य कोई बात नहीं। हे गोपाल, किस साधु के पास लाकर तुमने मुझे फँसाया? दिन-रात केवल यह खाऊँगा, वह खाऊँगा, कहकर तंग करता है। अब मैं यहाँ कभी नहीं आऊँगी।

मन में यह निश्चय कर अघोरमणि झुँझलाती वापस चली आतीं, पर कामारहाटी आते ही फिर उनके मन में परिवर्तन हो जाता। उस वक्त यही सोचतीं कि कब साधु बाबा के पास जाऊँ। दक्षिणेश्वर का जादू उन्हें तेजी से आकर्षित करता रहा। तब वे अपने को संयत नहीं रख पाती थीं।

इसी बीच अपने वायदे के मुताबिक परमहंसजी कामारहाटी आये। यहाँ देर तक भजन-कीर्तन होता रहा। सहसा परमहंसजी भावावेश में आ गये। इस दृश्य को देखकर सभी मुग्ध हो उठे।

धीरे-धीरे होली का मौसम आ गया। अपने नियम के अनुसार एक दिन रात को दो बजे गंगा-स्नान करने के बाद अघोरमणि जप करने बैठी। जप समाप्त करने के बाद अपने इष्टदेव को जप समर्पित करते समय प्राणायाम आरंभ किया तो देखा कि उनकी बगल में रामकृष्ण परमहंसजी बैठे हैं। सुनसान घर में वे बैठे हैं। उनके दाहिने हाथ की मुट्ठी बन्द है, चेहरे पर मुस्कान है। वृद्धा ने सोचा—मेरे कमरे में ये कैसे आ गये? कब, किधर से आये? दक्षिणेश्वर में जैसा देखा था, ठीक वैसी ही मूर्ति है।

इन्हीं बातों को मन ही मन सोचती हुई वृद्धा ने रामकृष्णजी के बायें हाथ को पकड़ा। तुरत वह मूर्ति गायब हो गयी। उसके स्थान पर दस महीने का एक बालक गोपाल (श्रीकृष्ण) प्रकट हो गया। वह बालक घुटनों के बल चलकर अघोरमणि के सामने आकर रुक गया और उसने कहा—"माँ, मुझे मक्खन दो।"

यह दृश्य देखकर वृद्धा अवाक् रह गयीं। यह कैसा जादू? अभी दक्षिणेश्वर का साधु था और अब यह बालक कैसे आ गया? भय से वह चिल्ला उठी, पर उस सुनसान मकान में उसकी आवाज कौन सुनता। देर तक बालक मक्खन की रट लगाता रहा।

वृद्धा रोती हुई बोलीं—"बेटा, मैं तो गरीब, दुखिया औरत हूँ। तुझे क्या खिलाऊँ? मेरे पास मक्खन, दूध, खीर, कुछ भी नहीं है।"

बालक पर इन बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह अपनी जिद पर अड़ा रहा। लाचारी में सिकहर से हँड़िया उतारकर उसमें के नारियल के लड्डू देती हुई अघोरमणि बोलीं—"बेटा गोपाल, मैं तुम्हें बड़ी रद्दी चीज खाने को दे रही हूँ, पर बदले में तुम इस तरह की चीज मुझे खाने को मत देना।"

गोपाल के उपद्रव के कारण अघोरमणि उस दिन जप नहीं कर सकीं। कभी वह अघोरमणि की गोद में बैठता तो कभी पीछे से पीठ के सहारे कंधे पर चढ़ता, कभी जप की माला खींचने लगता और कभी शोर मचाते हुए कमरे में धमाचौकड़ी मचाने लगता। अजीब हालत हो गयी। भोर होते ही अघोरमणि उस बालक को गोद में लेकर दक्षिणेश्वर रवाना हो गयीं।

अघोरमणि विचित्र चरित्र की थीं। इतनी कट्टर और छुआछूतों का विचार करती थीं जिसे देखकर निकट के व्यक्ति भी त्रस्त हो जाते थे। यहाँ तक कि तरकारी

में नमक बाजार से लाने के बाद उसे धोकर उपयोग करती रहीं। एक बार भोजन बनाने के बाद वह परमहंस को परोस रही थीं। न जाने कैसे रामकृष्णदेव का हाथ हँड़िया के कलछुल से लग गया। रामकृष्णदेव को वह गोपाल समझती रही, उनके प्रति अगाध भक्ति थी, उनका चरण-रज लेती रही, पर कलछुल के छू देने पर उस हँड़िये का अन्न उन्होंने ग्रहण नहीं किया।

दक्षिणेश्वर में शारदामाता कालीदेवी के लिए भोग बनाने के बाद रामकृष्णदेव के लिए भात और रसेदार तरकारी बनाती थीं। जिस दिन अघोरमणि दक्षिणेश्वर में रामकृष्णदेव का दर्शन करने आतीं, उस दिन वे यहीं अपना भोजन बनाकर खाती थीं। लेकिन जब तक शारदामाता तीन बार गोबर से चौका नहीं लगाती थीं तब तक अघोरमणि अपना भोजन नहीं बनाती थीं। अक्सर जब प्रसाद के रूप में परमहंसजी उन्हें कुछ खाने को देते तो वहाँ जरूर खा लेती थीं, पर अगर उस प्रसाद को लेकर घर आना पड़ता तो उसे स्वयं न खाकर मार्ग में किसीको दे देती थीं, क्योंकि उतनी दूर पैदल आने के कारण सड़क की अपवित्रता प्रसाद में प्रवेश कर जाती है। सड़क पर न जाने कितने लोग मल-मूत्र करते हैं, उन सबको लाँघकर आना पड़ता है। एक बार इसी प्रकार खड़दह स्थित श्यामसुन्दर मंदिर में प्रसाद मिला। उसे लेकर ज्यों ही आगे बढ़ीं त्यों ही पीछे से आवाज आयी—"क्यों री, प्रसाद खायेगी या किसीको दे देगी?"

पीछे मुड़कर अघोरमणि ने देखा—मंदिर की सीढ़ी पर खड़ा एक ब्राह्मण परिचित आवाज में प्रश्न कर रहा था। आवाज गोपाल (श्री रामकृष्णदेव को वह गोपाल कहती थीं और बालक गोपाल के प्रेम में विभोर होने के कारण रामकृष्णजी उसे गोपाल की माँ कहते थे।) की मालूम हुई, पर चेहरा भिन्न है। वहाँ से जब वह दक्षिणेश्वर आयीं तब रामकृष्णदेव से बोलीं—"गोपाल, मुझसे अपराध हो गया है। अब मैं क्या करूँ?"

प्रत्युत्तर में रामकृष्णदेव मुस्कराकर रह गये।

❑ ❑ ❑

बालक गोपाल को लेकर कितनी परेशानी हुई थी, इस बारे में दक्षिणेश्वर आकर अघोरमणि ने कहा था—"फिर मेरे लिए जप करना कठिन हो गया। गोपाल आकर मेरी गोद में बैठ गया, माला छीनने लगा, कंधे पर चढ़ने लगा। हटा देने पर कमरे में चारों ओर दौड़ने लगा। सेबरा होते ही पागलों की तरह दौड़ती हुई दक्षिणेश्वर चल पड़ीं। गोपाल भी गोद में सवार होकर चल पड़ा। एक हाथ गोपाल की कमर और दूसरा हाथ उसकी पीठ पर रखकर चल पड़ी। मैंने स्पष्ट रूप से देखा—उसके दो लाल-लाल चरण मेरे कलेजे से बराबर टकरा रहे थे।"

एक प्रकार से वह उन्मत्त भाव से उस दिन दक्षिणेश्वर आयी थीं। मंदिर के अहाते में प्रवेश करते ही वह पागलों की तरह चिल्लाती हुई आगे बढ़ रही थीं—

"गोपाल, गोपाल।" परिचित महिला की आवाज सुनकर झाड़ू लगानेवाली महिला अवाक् होकर देखती रह गयी—पगली की तरह बड़ी-बड़ी आँखें, जमीन से लथड़ता आँचल, अस्वाभाविक आकृति लिये वह रामकृष्णदेव के कमरे में चली आयी। उसे देखती ही रामकृष्णजी में भी भाव-परिवर्तन हो गया। ज्यों ही वह परमहंसजी के सामने बैठीं त्यों ही वे अघोरमणि की गोद में बैठ गये। अघोरमणि की आँखों से सावन-भादों की तरह पानी बहने लगा। आते समय कहीं से मक्खन ले आयी थीं। रामकृष्णजी को वह खिलाने लगीं।

सारा दृश्य अद्‌भुत था। रामकृष्ण भावाविष्ट होने पर भी कभी किसी महिला को स्पर्श तक नहीं करते थे और यहाँ तो प्रत्यक्ष रूप से गोपाल की माँ की गोद में बैठकर मक्खन खा रहे थे। कुछ देर बाद जब उनका वह भाव दूर हुआ तब वे चौकी पर जाकर बैठे। लेकिन गोपाल की माँ इस कदर भावाविष्ट हो गयी थीं कि गोद से रामकृष्णदेव के उठते ही वह आनन्द से उठकर नाचती हुई गाने लगीं—"ब्रह्मा नाचे, विष्णु नाचे और नाचे शंकर।"

ठाकुर ने जमादारिन से कहा—"देख, देख, गोपाल की माँ आनन्द से परिपूर्ण हो गयी है। इस वक्त इसका मन गोपाल-लोक में चला गया है।"

इस घटना के बाद से अक्सर गोपाल की माँ जब आनन्द में मगन हो जाती थीं तब अजीब हरकत करने लगती थीं। एक बार परमहंसजी के कई शिष्यों को भात का ग्रास बनाकर खिलाने लगीं। उस दिन वह अपने आनन्द से सचमुच बहुत अधिक भावाविष्ट हो गयी थीं। साथ में लाये बालक गोपाल को गोद में लेकर कहने लगीं—"यह रहा गोपाल मेरी गोद में। अरे, अब तो मेरा गोपाल तुम्हारे (रामकृष्णदेव) भीतर घुस गया। यह लो, अब निकल आया। आओ बेटा, अपनी दुखिया माँ के पास चले आओ।"

इस प्रकार वह चकित दृष्टि से आनन्द से विभोर होकर देखतीं कि कभी गोपाल उसकी गोद में आकर बैठता और कभी रामकृष्णदेव के शरीर में प्रवेश कर जाता था। एक प्रकार से वह आत्महारा हो गयी थी।

आज की घटना के कारण रामकृष्णदेव ने अघोरमणि का नाम 'गोपाल की माँ' रखा जो आगे चलकर सभी शिष्यों और भक्तों में प्रचारित हो गया। गोपाल की माँ की दशा देखकर स्वयं रामकृष्णजी भी प्रसन्न हो उठे। उसे शान्त करने के लिए उसके कलेजे पर हाथ फेरने लगे। उस समय खाने-पीने की जो सामग्री पास में थी, उसे खिलाया।

गोपाल की माँ खाती हुई बोलीं—"गोपाल, (रामकृष्णदेव) तेरी दुखिया माता बहुत कष्ट से जीवन गुजार रही है। लोगों के लिए जनेऊ बनाकर जो दो-चार पैसे मिलते हैं, उसीसे किसी सूरत से काम चलाती हूँ।"

दिनभर दक्षिणेश्वर में रखकर रामकृष्णदेव ने गोपाल की माँ को खिला-पिलाकर बिदा दे दी। पहले की तरह इस बार भी बाल गोपाल वृद्धा की गोद में कामारहाटी वापस आया। यहाँ आकर स्नान के बाद जप करने बैठीं तो गोपाल तंग करने लगा। ऐसी हालत में एकाग्रता कहाँ से आती? जप कैसे करतीं? आखिर तंग आकर उसे लेकर चौकी पर सो गयीं। वृद्धा के पास सिर पर लगाने की तकिया नहीं थी। तकिया के अभाव में गोपाल सोना नहीं चाहता था। अन्त में वृद्धा ने कहा—"आज किसी तरह सो जाओ। कल सबेरे कलकत्ता जाकर तुम्हारे लिए नयी तकिया ले आऊँगी।"

अन्त में अपनी बाँह पर गोपाल का सिर रखकर उसे सुलाया। दूसरे दिन भोजन बनाने के लिए बगीचे में जाकर सूखी लकड़ियाँ चुनने लगीं। गोपाल भी साथ-साथ बगीचे में आया और माँ की तरह लकड़ियाँ चुनकर मंदिर के बरामदे पर रखता रहा। रसोई बनाते समय वृद्धा की पीठ पर चढ़कर झूला झूलने लगा।

एक बार वृद्धा दक्षिणेश्वर आयीं तो परमहंसजी ने कहा—"तुम इतना जप क्यों करती हो? तुम्हारा सब हो गया है।"

"जप नहीं करूँगी तो क्या करूँगी? मेरा क्या सब हो गया है?"

परमहंसजी ने कहा—"सब हो गया है?"

गोपाल की माँ ने पूछा—"सच? सब हो गया है?"

परमहंसजी ने कहा—"तुम्हारा अपने लिए जप का कार्य समाप्त हो गया, पर चाहो तो इस शरीर के लिए (अपने को दिखाते हुए) जप कर सकती हो।"

गोपाल की माँ ने कहा—"ठीक है, अब जितना जप करूँगी, सब तुम्हारे लिए, तुम्हारे लिए, तुम्हारे लिए।"

इसके बाद गोपाल की माँ ने माला, थैली सब गंगा में फेंक दी। कुछ दिनों के बाद गोपाल की माँ का अविराम दर्शन बन्द हो गया। उन्होंने परमहंसजी से निवेदन किया—"गोपाल, तुमने यह क्या किया? मुझसे कौन-सा अपराध हो गया? अब तुम्हें पहले की तरह गोपाल-रूप में नहीं देख पाती।"

परमहंसजी ने कहा—"हमेशा इस तरह देखने से शरीर बना नहीं रहता। इक्कीस दिन बाद सूखे पत्ते की तरह झर जाता है।"

धीरे-धीरे गोपाल की माँ के लिए परमहंसजी का आचरण बदल गया। भक्तों के साथ अपने कक्ष में बैठे रहने पर अगर सहसा गोपाल की माँ वहाँ आ जातीं तो जैसे शिशु माँ को पाकर आदर करने लगता है, ठीक उसी प्रकार परमहंसजी उनके सिर से पैर तक हाथ फेरने लगते। साथ ही लोगों से कहते—"इस शरीर के भीतर हरि बैठे हैं। हरिमय शरीर है।"

गोपाल की माँ निर्विकार बैठी रहतीं। उन्हें इस बात का भी संकोच न होता कि परमहंसजी उनके चरण-स्पर्श कर रहे हैं। बाद में ठाकुर परमहंस उन्हें अच्छी-

अच्छी चीजें खाने को देते। गोपाल की माँ पूछतीं—"गोपाल, तुम मुझे इतना खिलाते क्यों हो?"

परमहंसजी कहते—"तुमने मुझे पहले बहुत खिलाया है।"

"कब?"

"अगले कई जन्मों में।"

एक बार परमहंसजी अपने साथ राखाल (स्वामी ब्रह्मानन्द) को लेकर, कामारहाटी आये। परमहंसजी को अपने घर में पाकर वृद्धा खुशी से नाचने लगीं। भोजनादि के पश्चात् जनाने महल में परमहंसजी के लिए बिछौना बिछा दिया गया। बिछौने पर बैठते ही परमहंसजी को दुर्गन्ध महसूस हुई। उन्होंने चौंककर चारों ओर देखा। सामने कोने में दो कंकाल मूर्ति प्रेत खड़े थे। प्रेतों ने कहा—"आप यहाँ क्यों हैं? आपके कारण हमें बड़ा कष्ट हो रहा है। आप चले जाइये।"

तुरत राखाल को लेकर परमहंसजी चले गये। गोपाल की माँ से उन्होंने इस रहस्य को नहीं बताया, क्योंकि उसे यहीं रहना है। कहीं डर न जाय। बाद में राखाल को उन्होंने सारी बातें बता दीं। हर वक्त देव-देवी के दर्शन के कारण अब गोपाल की माँ काफी उदार हो गयी थीं। धीरे-धीरे उनकी सारी कट्टरता समाप्त हो गयी थी। खासकर बालक गोपाल के उपद्रव के कारण छुआछूत की भावना में कमी आ गयी थी। लेकिन उनकी इस सनक से सभी परिचित थे।

स्वामी विवेकानन्द विदेश से लौटे। उनके साथ कई अंग्रेज महिलाएँ थीं। स्वामीजी ने गोपाल की माँ से कहा—"मेरे कुछ शिष्य मेम और साहब हैं। अब यह बताओ कि उन्हें अपने पास आने दोगी या इससे तुम्हारा धर्म-कर्म नष्ट होगा?"

गोपाल की माँ ने कहा—"यह क्या कह रहे हो बेटा? वे जब तुम्हारी सन्तानें हैं तब तो मेरे पोते-पोती हैं। उन्हें तो प्यार से गोद में बैठाऊँगी। डरो मत। ले आओ उन लोगों को।"

बाद में देखा गया कि सचमुच गोपाल की माँ में अब पहले जैसी कट्टर भावना नहीं है। सुश्री सारा बुल, श्रीमती मैकलाउड और सिस्टर निवेदिता नाव से एक बार कामारहाटी आयीं। गोपाल की माँ बड़े आदर के साथ उन्हें अपने कमरे में ले जाकर बिछौने पर बैठायीं। उनका चिबुक पकड़कर चुम्बन लिया।[1] उन्हें लाई, नारियल के लड्डू खाने को दिया। वृद्धा के स्नेह से सभी अभिभूत हो उठीं।

इस घटना को सुनकर स्वामीजी ने विदेशी महिलाओं से कहा—"वाह! तुम लोग भारत के प्राचीन महान् आदर्श का दर्शन कर आयी हो। अब तो उपासना, अश्रुवर्षण, उपवास, जागरण, ब्रह्मचर्य, तपस्यामय भारत मिटता जा रहा है। वह पुनः वापस नहीं आयेगा?"

---

1. बंगाल में कनिष्ठ लोगों का चिबुक छूकर अपनी अँगुलियों को चुमने की प्रथा है जिसे आशीर्वाद का स्वरूप माना जाता है।

परमहंसजी के तिरोधान के पश्चात् गोपाल की माँ बलराम बसु के घर आकर रहने लगीं। उन्हें सिद्ध महिला जानकर कुछ लोग उनसे प्रश्न करते। गोपाल की माँ कहतीं—"मैं इसका क्या जवाब दूँ? तुम लोग शरत्, तारक और योगेन से पूछो।" जब प्रश्नकर्ता अधिक जिद करता तब कहतीं—"अच्छा, अपने गोपाल से पूछती हूँ। गोपाल, अरे गोपाल, देख, ये लोग क्या पूछ रहे हैं। मैं तो कुछ समझती नहीं। तू आकर इन्हें जाब दे दे।"

इस प्रकार प्रश्न-उत्तर का कार्यक्रम चलता। गोपाल की माँ प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में कहतीं—"गोपाल यह कह रहा है।" गोपाल कहाँ है, इसे प्रश्नकर्ता देख नहीं पाते। बस, उन्हें यही बोध होता कि गोपाल कीं माँ उनसे बातें कर रही हैं और अचानक कभी-कभी कह उठतीं—"अरे गोपाल, तू चला जा रहा है? इनके सवालों का जवाब महीं देगा?" गोपाल के चले जाने पर फिर कोई जवाब न मिलता।

अक्सर कभी कोई शिष्य कुछ देना चाहता तो वे विरोध करती हुई कहतीं—"मुझे कुछ नहीं चाहिए। गोपाल मुझे सब देता है। हो सके तो कुछ आलू और करेला दे जाना। इससे अधिक कुछ नहीं चाहिए।"

कुछ अशक्त होने पर राखाल महाराज ने उनकी देखरेख के लिए एक बालक भक्त को भेजा। अक्सर आधी रात के बाद भक्त की नींद खुल जाती। उसे लगता, जैसे माँ-बेटे में लड़ाई हो रही है। वृद्धा कहती—"अरे, ठहर भी जा। अभी रात है। काक, कोकिल की आवाज जब सुनाई देगी तब नहाने जाना।"

भक्त बालक पूछता—"आप किससे बातें कर रही हैं?"

वृद्धा कहतीं—"तुझे नहीं मालूम? अपने गोपाल से बातें कर रही थी। बड़ा शैतान लड़का है। कहना मानता नहीं, इसीलिए डाँट रही थी।"

बाद में सिस्टर निवेदिता उन्हें अपने घर ले गयीं। यहाँ उनकी सेवा करने लगीं। उनके भोजन का प्रबंध पड़ोस के एक ब्राह्मण-परिवार में कर दिया गया। इसी भवन में, 8 जुलाई, सन् 1906 को उनका निधन हुआ था। उनके निधन के पश्चात् उनका माला सिस्टर निवेदिता ने ग्रहण की और उनके द्वारा पूजित रामकृष्णजी का चित्र श्री श्री शारदामाता के मंदिर में रख दिया गया।

●
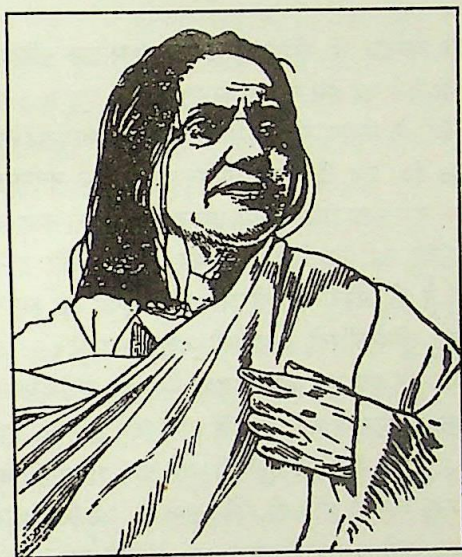
श्री माँ आनन्दमयी

बंगाल के वीरभूमि जिला की तरह त्रिपुरा जिला भी सिद्धों की भूमि रही है। यहाँ अनेक सिद्धों और योगियों ने जन्म लेकर साधना की है।

इसी जिले के खेउड़ा ग्राम में विपिनबिहारी भट्टाचार्य नामक एक ब्राह्मण सपरिवार रहते थे। विपिनबिहारी का आदि निवास-स्थान विद्याकूट था। खेउड़ा गाँव में उनका ननिहाल था।

विपिनबाबू की पत्नी बंगाल की परम्परा के अनुसार धार्मिक प्रवृत्ति की थी। पूजा-पाठ, व्रत तथा अनुष्ठान बराबर करती थीं। कहा जाता है कि इनके पूर्वजों में कुछ लोग सिद्ध पुरुष थे।

विपिनबाबू की आमदनी सामान्य थी। किसी प्रकार से गृहस्थी की गाड़ी चल रही थी। विपिनबाबू की माँ को एक दिन जब यह ज्ञात हुआ कि उनकी पुत्रवधू गर्भवती है तब वे कसबा के प्रसिद्ध काली मंदिर में 'लड़का पैदा हो' कहने के लिए गयीं, पर विग्रह के सामने अपनी इच्छा को प्रकट न कर कह बैठीं—'विपिन को लड़की प्राप्त हो।'

विपिनबाबू की पत्नी इसके पूर्व कई बच्चों को जन्म दे चुकी थीं, पर सभी का निधन हो गया था। पुत्र-शोक के कारण पत्नी की स्थिति खराब हो गयी थी।

उनके शोक को भुलाने के लिए श्रीशचन्द्र चक्रवर्ती नामक युवक उनके पास जाकर बोला—''मैं तेरा बेटा हूँ माँ। क्यों तुम शोक करती हो? मैं तुम्हारी सेवा, देखरेख करूँगा।''

आगे चलकर वास्तव में श्रीशचन्द्र का व्यवहार इस परिवार के साथ इसी प्रकार का हो गया था जैसे वह इस घर का लड़का हो।

सास की मनौती के कारण मोक्षदा को लड़के के स्थान पर लड़की प्राप्त हुई। 3 अप्रैल, सन् 1896 ई०, रात तीन बजे विपिनबाबू के घर नवजात कन्या ने जन्म लिया। इस कन्या का नाम रखा गया—निर्मलासुन्दरी। दूध की तरह गौर वर्ण थी।

इसमें कोई संदेह नहीं कि निर्मला अत्यंत रूपवती और आकर्षक आकृति-वाली थी। सहेलियों ने भी अपनी-अपनी रुचि के अनुसार इस लड़की के कई नाम रखे—कमला, विमला, तीर्थवासिनी, दाक्षायणी, गजगंगा आदि।

निर्मला के जन्म के पूर्व एक और लड़की पैदा हुई थी जिसका निधन हो गया था। इसी शंका के कारण निर्मला को जन्म के दूसरे दिन से नित्य उसकी माँ मोक्षदा आँगन में तुलसी के पौधे के नीचे रख देती थी। यह क्रम 18 माह तक जारी रहा।

अधिकतर शिशु भूमिष्ठ होते ही रोने लगते हैं, पर निर्मला शान्त रही। इस बारे में भक्तों के प्रश्न करने पर उन्होंने कहा था—''रोती क्यों? उस वक्त कमरे में लगे टट्टरों की सूराख से बाहर का दृश्य देख रही थी।''

अबोध रहते हुए भी बचपन से निर्मला देवी-देवताओं के दर्शन करती, अनेक अलौकिक दृश्य चलचित्र की भाँति उसकी नजरों से गुजर जाते थे। उन दिनों जब कभी कीर्तन सुनती तब भावावेश में आ जाती थी। जिस कमरे में निर्मला का परिवार रहता था, हमेशा अंधकार रहता था, इसलिए निर्मला में होनेवाली प्रक्रियाओं को लोग देख नहीं पाते थे।

लोकालय में जब कभी निर्मला को समाधि लग जाती तब माँ सोचती कि लड़की को नींद लग गयी है। वह बिगड़कर कहती—''सोती क्यों है? कीर्तन क्यों नहीं सुनती?'' निर्मला उन्हें कैसे समझाती कि मैं सो नहीं रही हूँ, बल्कि अपने-आंप यह हो रहा है।

यह स्थिति कभी-कभी भोजन करते समय हो जाती थी जब वह किसी ओर एकटक देखने लगती थी। तब माँ या दादी बिगड़ उठतीं—''ऊँट की तरह मुँह ऊपर क्या उठाये बैठी है? खाना नहीं खाना है?''

ढाई-तीन साल की लड़की के लिए यह समझाना कठिन हो जाता था कि वह शून्य में कितने अलौकिक दृश्य देख रही है। उसके भीतर कितनी प्रक्रियाएँ अपने-आप हो रही हैं। वह जान-बूझकर ऐसा नहीं कर रही है। उससे करवाया जा रहा है।

निर्मला की स्कूली शिक्षा सामान्य रही। लेकिन एक बार जो कुछ लिखा या पढ़ा दिया जाता था, उसे वह भूलती नहीं थी। अपनी प्राथमिक शिक्षा के बारे में उन्होंने कहा है—"जो लोग पुस्तकें पढ़ते हैं, वे जरूर कुछ पकड़ लेंगे। लेकिन आदमी को देखकर या पुस्तकें पढ़कर मेरी शिक्षा नहीं हुई है। मेरा जन्म जहाँ हुआ है, वहाँ पढ़ाई-लिखाई की कोई चर्चा नहीं थी। चारों ओर मुसलमानों के घर थे। वे लोग कभी पढ़ते-लिखते नहीं थे। उनके साथ हमारा मेलजोल नहीं था। गोकि सभी मुझे प्यार करते और आदर देते रहे। मेरी माँ की मनाही थी, इसलिए स्नान के पूर्व के सिवा और किसी समय मुसलमानों के घर नहीं जा पाती थी।

"पिताजी ने बचपन में मुझे बाल-शिक्षा के नाम पर क-ख और सामान्य संयुक्त अक्षर के ज्ञान की शिक्षा दी थी। एक दिन सीधा और एक दिन उल्टा क-ख पढ़ती रही। इसके बाद दूर के रिश्ते से लगनेवाले पिताजी के एक मामा ने मुझे एक प्राइमरी स्कूल में भर्ती कराया। यह उनका निजी स्कूल था जहाँ प्राइमरी तक पढ़ाई होती थी। इसका एक कारण था। मैं निम्न प्राइमरी क्लास में पढ़ती हूँ, सुनने पर विवाह के बाजार में मेरी मर्यादा बढ़ जायगी। मेरे पास स्लेट नहीं थी। एक छोटी स्लेट पर लिखती थी। स्कूल में भर्ती होने पर भी मैं नित्य स्कूल नहीं जा पाती थी। हमारे मकान से स्कूल काफी दूर था। माँ मुझे अकेली स्कूल जाने नहीं देती थी। जब किसीके साथ भेजती तब जाती थी। बाकी दिन घर पर रहती थी। इस तरह जो पाठ मैं पढ़ती और बाद में जाने पर देखती कि पढ़ाई का पाठ आगे बढ़ गया है। इस बीच उन लोगों के समकक्ष आने के लिए मुझे अनेक पृष्ठ पढ़ने पड़ते थे। फिर भी मैं क्लास में हमेशा प्रथम आती थी। इसका कारण यह था कि घर पर बैठकर पढ़ते समय जितने अक्षर मेरी आँखों से टकरा जाते थे, उनके अर्थ अपने-आप आ जाते थे। जैसे पुस्तक लेकर 'हस्ती' शब्द पर निगाह पड़ी तो उसका अर्थ मन में उत्पन्न हुआ—हाथी।

"जब स्कूल जाती तब मास्टर साहब उन्हीं शब्दों के बारे में पूछते थे जिनसे मेरी आँखें टकराती थीं। फलतः मुझे उत्तर देने में कष्ट नहीं होता था। मैं फटाफट बता देती थी और यह देखकर सहयोगी छात्राएँ अवाक् रह जाती थीं। कारण वे बता नहीं पाती थीं। लेकिन जब वे पुस्तक पढ़ने को कहतीं तब पढ़ नहीं पाती थी।

"एक बार स्कूल में इंस्पेक्टर साहब मुआइना करने आये। उन्होंने पुस्तक में से एक पृष्ठ खोलकर पढ़ने को दिया। उस पृष्ठ को देखते ही लगा जैसे इसे पढ़ चुकी हूँ। मैं बिना हिचके सरासर पढ़ती गयी। यह देखकर सभी प्रसन्न हो गये।

"पढ़ाई-लिखाई के मामले में पोथीवाली विद्या मुझमें नहीं थी। ठीक इसी प्रकार धार्मिक विषयों के सम्बन्ध में देखकर कुछ सीखा नहीं। घर में पूजा-घर था। माँ के आदेश पर ठाकुर-घर का काम करती थी।"

आगे विवाह के समय पर वर-पक्ष को यह बताया गया था कि लड़की निम्न प्राइमरी तक शिक्षा प्राप्त कर चुकी है। यह बात सुनकर वर ने इच्छा प्रकट की कि लड़की अपना हस्ताक्षर दिखाये। काफी दबाव डालने के बाद हस्ताक्षर दिखाया गया। विवाह के बाद आगे का ज्ञान देने के लिए पति ने एक पुस्तक खरीदकर दी। एक दिन वे पुस्तक पढ़ने की आज्ञा देकर स्वयं लेटकर पाठ सुनने लगे। निर्मला ठीक से पढ़ नहीं पा रही है देखकर वर ने कहा—''यही है प्राइमरी की शिक्षा? यह तो पहली पोथी भी नहीं है।''

माँ-बाप ने निर्मला के लिए तेजी से लड़के की खोज की। विक्रमपुर के आटपाड़ा गाँव का एक लड़का इन्हें पसन्द आ गया। नाम था—रमणीमोहन चक्रवर्ती। पुलिस महकमे में काम करता था। विवाह के कुछ दिनों बाद रमणीमोहन की नौकरी छूट गयी। इसके बाद वे ढाका के नवाब के यहाँ नौकरी करने लगे।

नयी जगह, घर में निर्मला अकेली रहती थी। पड़ोस में जब भागवत-पाठ होता तब वहाँ चली जाती थी। अब तक निर्मला को भावावेश सुनसान कमरे में होता था। वहीं समाधि भी लग जाती थी। लेकिन अब आम लोगों के सामने यह दृश्य होने लगा।

उस समय सारा शरीर काबू के बाहर हो जाता था। इसी दौरान आसन, मुद्रा, प्राणायाम आदि उनके शरीर से होने लगते थे। जो लोग इस प्रकार की घटनाओं से अपरिचित थे, वे सोचते कि निर्मला को हिस्टीरिया की बीमारी है।

स्वयं रमणीबाबू यह दृश्य देखते, पर उनकी बुद्धि काम नहीं देती थी। कुछ लोगों ने सुझाव दिया कि तुम्हारी पत्नी पर भूत का साया है। अच्छे ओझा को बुलाकर दिखाओ, वरना जीवनभर परेशान रहोगे।

ओझा आकर देखते, पर उनका तंत्र-मंत्र काम न देता। कई ओझा तो निर्मला को 'माँ-माँ' कहते हुए नमस्कार करते और कई यह कहकर चल देते कि इसे ठीक करना मेरे बूते के बाहर की बात है।

सन् 1922 की घटना है। अचानक एक दिन निर्मला के भावों में परिवर्तन होने लगा। इस घटना के तीन महीने बाद झूलन-पूर्णिमा को अर्द्ध रात्रि के समय निर्मला की दीक्षा-क्रिया अपने-आप हो गयी।

दीक्षा के बाद लगातार पाँच माह तक निर्मला के शरीर पर आसन, प्राणायाम, मुद्रा आदि होते रहे। रमणीबाबू रात का भोजन करने के बाद जब सो जाते थे तब जमीन पर आसन बिछाकर निर्मला साधना करने लगती। कभी-कभी नींद खुल जाने पर रमणीबाबू देखते कि वह बेखबर सो रही है, पर उसकी उँगलियाँ जप की तरह निरन्तर चल रही हैं।

बाजितपुर रहते समय ही निर्मला के शरीर में योग-क्रियाएँ प्रकट होती रहीं। साधारण लोग इसका मर्म नहीं समझ पाये थे। कोई इसे भक्ति-आवेश, कोई रोग समझता रहा। कुछ लोग इलाज की सलाह रमणीबाबू को दे चुके थे।

निर्मला के ममेरे भाई निशिकान्त भट्टाचार्य उन दिनों बाजितपुर में थे। एक दिन इस दृश्य को देखकर उन्होंने रमणीबाबू से कहा—''यह सब घटना आप चुपचाप देखते जा रहे हैं? किसी अच्छे डॉक्टर या कविराज को क्यों नहीं दिखाते?''

उस समय निर्मला घूँघट काढ़े एक कोने में बैठी थी। अपनी चर्चा सुनते ही निर्मला के भावों में परिवर्तन होने लगा। वह आसन पर तनकर बैठ गयी और अपने ममेरे भाई से पूछा—''क्या करने को कह रहा है, रे?''

यद्यपि निर्मला ने इन बातों को सहज ढंग से कहा था, पर उसकी आवाज और मुद्रा देखकर निशिकान्त भट्टाचार्य डरकर कई कदम पीछे हट गये। उन्हें अपनी बहन का व्यवहार अस्वाभाविक-सा लगा।

निर्मला ने पुनः कहा—''डर गया? डर मत।''

निशिबाबू ने पूछा—''आप कौन हैं?''

''पूर्ण ब्रह्मनारायण।''

निर्मला की बातें सुनकर रमणीबाबू चौंके। विस्मय से उन्होंने पूछा—''कौन हो तुम?''

''महादेव—महादेवी।''

दोनों व्यक्ति एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। सहसा निशिबाबू ने पूछा—''क्या आपकी दीक्षा हो गयी है?''

''हाँ, हो गयी है।''

''रमणीबाबू की?''

''नहीं, आज से पाँच माह बाद होगी। 15 अगहन, गुरुवार, द्वितीया तिथि को।''

निर्मला के इन उत्तरों को सुनकर निशिबाबू का माथा गोल हो गया। दोनों ही यह बात जानते थे कि निर्मला को पंचांग देखना नहीं आता। तुरत पड़ोस से पंचांग मँगाया गया ताकि यह मालूम किया जाय कि उस दिन उक्त तिथि, वार आदि है या नहीं। पंचांग देखने पर ज्ञात हुआ कि सारी बातें ठीक हैं।

पाँच माह बाद रमणीबाबू की दीक्षा हुई। उसी दिन से वे अपनी पत्नी को 'माँ' कहने लगे। निर्मला ने अपने पति का नाम रखा—भोलानाथ। एक प्रकार से यह अद्भुत काण्ड था।

रमणीमोहन के पूर्व निर्मलादेवी को सर्वप्रथम 'माँ' के नाम से सम्बोधन करनेवाले हरकुमार थे। उनके बारे में निर्मलादेवी ने कहा है—''**हरनाथ ही पहला**

व्यक्ति था जिसने मुझे 'माँ' कहकर पुकारा था। भोलानाथ उसे बच्चे की तरह प्यार करते थे। लेकिन मैं उसके साथ बात नहीं करती थी। वह दोनों जून आता, मुझे प्रणाम करता और मुझसे पानी माँगता। प्यास लगी है, इसलिए पानी नहीं माँगता था। मेरे हाथ से पानी पीने की उसकी आदत थी। उसका कहना था कि किसीके हाथ से पानी पीने पर यह समझ में आ जाता है कि वह व्यक्ति सत्व, रज या तम कौन-सा गुणवाला है। जब उसकी अन्यत्र नौकरी लग गयी तब वहाँ जाने के पहले मुझे कहता गया—'मैंने तुझे 'माँ' कहकर पुकारा और तूने जवाब नहीं दिया। एक दिन तुझे जमाना 'माँ' कहकर पुकारेगा।' आगे चलकर उसकी बातें सही हुईं।''

सन् 1942 ई० में श्री ज्योतिषचन्द्र राय नामक एक युवक निर्मलादेवी के पास आया। वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने सर्वप्रथम निर्मला को 'माँ आनन्दमयी' के नाम से सम्बोधित किया। आगे चलकर निर्मलादेवी का यही नाम उनके भक्तों में प्रचारित हो गया। लोग उनका वास्तविक नाम एक प्रकार से भूल गये।

इस समय तक निर्मलादेवी की यौगिक शक्ति से अधिकांश लोग परिचित हो गये थे, पर जिन दिनों श्री हरकुमार ने 'माँ' कहा था, उन दिनों निर्मलादेवी बंगाल की रूढ़िवादी परम्परा का पालन कड़ाई से करती थीं। इस बारे में उन्होंने कहा है—''एक दिन ऐसा भीं था जब मैं पर्दानशीन घर की बहू थी। सर्वांग ढाँककर, लगभग एक हाथ घूँघट काढ़ती थी। कहीं कोई देख न ले, इसलिए घर के दरवाजे और खिड़कियाँ बन्द रखती थी। जिस कमरे में रहती थी, उसे साफ-सुथरा रखती थी। कूड़े का एक कण भी नहीं छोड़ती थी। भोजनादि के पश्चात् शयन-घर में प्रवेश करते समय हाथ-पैर धोकर पवित्र भाव में प्रवेश करती थी। और आजकल लज्जा नहीं, शर्म नहीं, सभी के साथ बातें कर रही हूँ। शुचि-अशुचि के बारे में ख्याल नहीं करती।''

इस बात में संदेह नहीं कि आनन्दमयी माँ में अलौकिक प्रतिभा थी। जहाँ साधना के लिए गुरु की आवश्यकता है, ताकि उनके द्वारा प्राप्त बीज मंत्र का जप, उनके द्वारा निर्देशित प्राणायाम, योग-साधना आदि करने पर साधना के सोपान पर अग्रसर हुआ जाता है, ऐसी समस्त क्रियाएँ आनन्दमयी माँ में अपने-आप होती गयीं। इसमें कितना रहस्य है, इसकी जानकारी उच्चस्तर के साधक ही बता सकते हैं।

विश्वविख्यात विद्वान् डॉ० गोपीनाथ कविराज आनन्दमयी माँ के विशिष्ट भक्त थे। काशी में अपना मकान रहते हुए भी वे आनन्दमयी माँ के आश्रम में रहते थे। कभी-कभी उनके साथ भारत के विभिन्न स्थानों में भ्रमण करने जाते थे। आनन्दमयी माँ को वे देवी का अवतार मानते रहे।

अपने एक आलेख में उन्होंने लिखा है—"जो लोग माँ के स्थूल देह के इतिहास से परिचित हैं, वे यह जानते हैं कि विभिन्न लोगों ने, विभिन्न दृष्टि से उन्हें देखा है। काल के परिवर्तन से अनेक लोगों की दृष्टि में परिवर्तन हुए हैं, ऐसी बात नहीं है। सृष्टि में अनेक वैचित्र्य है, यहाँ भी है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। बाजितपुर में जब वे थीं तब लोगों ने उनकी विशिष्टता देखी और सुनी। उन दिनों विचार-हीन लोग माँ की अवस्था को अज्ञातवश भूत-प्रेत या क्षुद्र देवताओं का आवेश मानते रहे। भूत भगाने के उपाय भी किये गये थे। कुछ ही दिन के भीतर यह ज्ञात हो गया कि इस भूत को भगाना ओझाओं के बूते के बाहर की बात है। कुछ लोग इसे हिस्टीरिया, वायु-रोग आदि समझते रहे। भाव के प्रकाश में जितने असाधारण लक्षण प्रकट होते रहे, उनके बारे में लोगों के विचित्र विचार थे। बाद में उनके भ्रम का निवारण हो गया। भाव के स्फुरण से दैहिक परिवर्तन होता है, इसे लोग अनायास समझ नहीं पाते थे। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा अन्य महापुरुषों के बारे में ऐसी बातें प्रचारित हुई थीं।

"वास्तव में माँ एक श्रेष्ठ साधिका हैं। अपने पूर्वजन्म की साधना के फलस्वरूप उन्होंने उद्धर्वगति प्राप्त कर ली थी। लेकिन पूर्ण ज्ञान के अभाव के कारण ही इन्हें पुनर्जन्म लेना पड़ा। इस शरीर में ज्ञान का पूर्ण विकास प्राप्त कर जीवन्मुक्ति या स्थितप्रज्ञ-स्थिति प्राप्त कर सकी थीं। इस जन्म में उन्हें गुरु की आवश्यकता नहीं हुई। अन्त:स्थित अन्तर्यामी गुरु उन्हें आवश्यकतानुसार संचालित करते रहे। वर्तमान जन्म इनका अन्तिम जन्म है।

"यह ठीक है कि माँ का चरित्र सभी अंशों में अनुकरणीय नहीं है, कारण वे आत्मबोध में प्रतिष्ठित, भावाभाव से अतीत, द्वन्द्व-विनिर्मुक्त और शास्त्रीय विधि-निषेध से बहिर्भूत हैं। वे वही हैं, वे किसी के लिए अनुकरणीय नहीं हैं। अक्सर माँ कहा करती हैं—इस शरीर से तुम लोगों की आवश्यकतानुसार सब कुछ अपने-आप होता जा रहा है। इससे समझा जा सकता है कि माँ का शरीर जब जिस रूप में भले ही अभिनय हो, वह इच्छाकृत नहीं है, बल्कि स्वाभाविक है।"

श्रद्धेय गोपीनाथ कविराज आमतौर पर किसीकी प्रतिभा को सहज ही स्वीकार नहीं करते जब तक कि अपनी कसौटी पर उसे कस नहीं लेते। अपने जीवन में अनेक महापुरुषों को उन्होंने देखा और सत्संग किया है। यहाँ तक कि माता आनन्दमयी को भी इस क्षेत्र में परख चुके हैं जिसका उदाहरण निम्न प्रश्नोत्तरी से मिल जाता है—

प्रश्न—मैं बड़ा हूँ या इष्ट बड़ा है?

उत्तर—तुम्हारा क्या ख्याल है?

प्रश्न—मेरा ख्याल है कि मैं बड़ा हूँ, क्योंकि इष्ट मुझमें लीन हो जाता है, पर तब भी मैं रहता हूँ।

उत्तर—यह अभी नहीं कहूँगी। मैं कहूँगी कि अभी भी इष्ट बड़ा है तुम्हारे लिए। अभी वह स्थिति नहीं है जब तक मैं और इष्ट का पृथक् बोध है तब तक इष्ट बड़ा है। जब पृथक् बोध नहीं रहेगा तब दोनों एक हो जायेंगे। उस समय एक ही रहेगा। एकमात्र वही रहेगा, वही मैं। अभी अगर 'मैं' में विश्वास करने लगोगे तो तुम्हारी गति रुक जायगी, फिर विकास नहीं होगा। जब तक गुरु-शिष्य का बोध रहता है तब तक गुरु ही बड़ा होता है। जब दोनों एक हो जायेंगे तब उस समय बाधा नहीं रहेगी।

प्रश्न—माँ, कभी-कभी अपने को देखा जाता है? अच्छी तरह देखा है कि मैं अपने शरीर को देख रहा हूँ। उस स्थिति में कौन देखता है?

उत्तर—वह अभ्यासमात्र है, प्रकृत द्रष्टा नहीं। जब सामने कीर्तन होता है तब ऐसा लगता है जैसे मैं सभी के साथ मिल गया हूँ। मानो शब्दमय होकर शब्द सुन रहा हूँ, मानो सभी के साथ मिलकर सभी को देख रहा हूँ। उनके बीच अपना शरीर देखा जाता है। यह सब आभासमात्र है। वास्तविकता नहीं है।

आनन्दमयी माँ प्रारंभ से ही अतीन्द्रिय शक्तिसम्पन्न थीं। ऐसे दृश्य और घटनाएँ देख लेती थीं जिसे अन्य साधक प्रयत्न करने पर देख पाते हैं। इस प्रकार की एक घटना का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा।

जिन दिनों आनन्दमयी माँ नवाब के शाहबाग में रहती थीं, उन दिनों की बात है। आनन्दमयी माँ कहती हैं—"यहाँ रहते समय जब मैं भोजन बनाने लगती तब अक्सर एक स्थान की तस्वीर मेरी आँखों के सामने तैर जाती। वह तस्वीर अन्य स्थान की नहीं, बल्कि ढाका स्थित सिद्धेश्वरी मंदिर की होती थी। लेकिन उस समय मैं यह नहीं जानती थी कि वह स्थान कहाँ है। अक्सर मैं भोलानाथ से इस मंदिर के बारे में पूछती। मेरे प्रश्न का वे जवाब नहीं दे पाते थे। एक बार मुझे वे एक जगह ले भी गये। वहाँ का दृश्य देखकर समझ गयी कि जिस स्थान का चित्र मैं देखती रही, वह यह नहीं है।

"भोलानाथ के यहाँ बाउलबाबू बराबर आते थे। एक दिन उनसे भी पूछा, वे भी नहीं बता सके। कुछ दिनों बाद रमना की कालीबाड़ी से लौटते समय मैंने बाउलबाबू से पूछा—'आप हमारे साथ न चलकर जंगल के रास्ते से क्यों जाते हैं?' बाउलबाबू ने कहा कि वह सिद्धेश्वरबाड़ी जाता है। उधर जंगल है। किसी दिन आपको वहाँ ले जाऊँगा। इसके बाद एक दिन वह हमें सिद्धेश्वरबाड़ी ले गये। वहाँ पहुँचते ही मैंने देखा कि जिस स्थान को चित्र की भाँति देखती आयी हूँ, यह वही

स्थान है। वही मंदिर, वही बरगद का पेड़, सब कुछ वही। हम उस दिन सिद्धेश्वरबाड़ी का दर्शन कर चले आये।

"एक दिन दोपहर को मैं सामान ठीक करने लगी। कहाँ जाऊँगी यह निश्चय नहीं किया था। भोलानाथ के आने पर मैंने कहा कि सिद्धेश्वरबाड़ी चलें। तीसरे पहर हम लोग वहाँ पहुँच गये। यहाँ आने पर ख्याल आया कि मुझे यहाँ सात दिन रहना है। यह बात सुनकर भोलानाथ ने कहा कि ऐसा कैसे हो सकता है? बात यह है कि उन दिनों वे शाहबाग में कुलियों को लेकर काम कर रहे थे। उनके लिए सात दिन यहाँ रुकना कठिन था। मैंने कहा कि जब माँ (कालीदेवी) यहाँ हैं तब डर किस बात का? मैं यहाँ अकेली रह जाऊँगी। अन्त में यह तय हुआ कि वे नित्य सबेरे चले जायेंगे और शाम को लौट आयेंगे।

"इस प्रकार छह दिन, छह रात बीत जाने के बाद सातवें दिन भोर के समय ख्याल हुआ कि अब यहाँ से चल देना चाहिए। भोलानाथ को लेकर मैं मंदिर से बाहर चल पड़ी। जंगल के भीतर आकर एक जगह साफ-सुथरा देखकर बैठ गयी। बैठने के पूर्व उस स्थान की प्रदक्षिणा की। उस समय वर्षा थम गयी थी। मैं जिस जगह बैठी थी, उस जगह दाहिने हाथ से दबाने लगी। जमीन कड़ी थी पर दबाव के कारण मेरा हाथ भीतर प्रवेश करता गया। यह देखकर भोलानाथ डर गये। मेरा हाथ पकड़कर बोले—'चलो, यहाँ से चलें।' यह सुनकर मैंने हाथ निकाल लिया। हाथ बाहर निकालते ही वहाँ गड्ढा हो गया और फौवारे की तरह पानी निकलने लगा। यह बरसाती पानी नहीं था, क्योंकि गरम और लाल रंग का था। लाल रंग होने के कारण मेरा हाथ तथा कंगन दोनों लाल हो गये। यह रंग मेरे कंगन पर सात दिनों तक बना रहा।"

आगे चलकर यहीं आनन्दमयी माँ के भक्तों ने ढाका में आश्रम बनवाया।

भोलानाथ शाहबाग में नवाब की ओर से काम करते थे। उस बाग में एक फकीर की कब्र थी। इस कब्र के बारे में आनन्दमयी माँ ने कहा है—"मैं जिन दिनों बाजितपुर में रहती थी, उन दिनों पहले-पहल इस फकीर से मुलाकात हुई थी। मानों फकीर साहब मुझे बुलाने के लिए बाजितपुर गये थे।"

ज्ञातव्य रहे कि यह मुलाकात अशरीरी अवस्था में हुई थी, अर्थात् फकीर साहब का निधन हो गया था। यहाँ एक बात और बता देना आवश्यक है कि आनन्दमयी माँ 'मैं' शब्द का प्रयोग बातचीत में नहीं करती थीं। उसके बदले 'यह शरीर' या 'आपकी लड़की' शब्दों का प्रयोग करती थीं। पुरुषों को 'पिताजी' कहकर सम्बोधन करती थीं।

माँ ने आगे कहा—"पहले-पहल जब पिताजी (फकीर साहब) से मुलाकात हुई थी तब मुझे ऐसा लगा जैसे वे अरब देश के कोई महापुरुष हैं। तब तक मैं यह

भी नहीं जानती थी कि अरब नामक कोई देश है या नहीं। जब मैंने इस घटना का जिक्र भोलानाथ से किया तो उन्होंने आश्चर्य के साथ कहा—'तुम हिन्दू देवी-देवता के बदले यह सब क्या देखने लगी?' बाद में शाहबाग आने पर ज्ञात हुआ कि अरब देश के फकीर की कब्र यहाँ है। नवाब-परिवार के लोग फकीर साहब को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे, इसलिए उनकी कब्र यहाँ बना दी गयी।

"एक दिन नाचघर में कीर्तन हो रहा था। सहसा मुझमें भावावेश हो गया। उसी हालत में कमरे के बाहर निकल आयी। कुछ दूरी पर एक मुसलमान खड़ा था। उसके जरिये कब्रघर का ताला खोलवाकर मैं एक ओर खड़ी हो गयी। इधर मेरी हालत ऐसी हो गयी कि हिलने-डुलने का नाम नहीं। नमाज पढ़ते वक्त मुसलमान जिस प्रकार आंगिक क्रियाएँ करते हैं, ठीक उसी प्रकार मेरी आंगिक क्रियाएँ होने लगीं। मुँह से ध्वनि निकलने लगी। मैं उसका अर्थ समझ नहीं सकी। कुछ देर बाद अपने-आप सब रुक गया और मैं घर से बाहर निकल आयी। इस घटना का प्रचार इतनी तेजी से हुआ कि नवाबजादी परीबानू का पुत्र, पुत्रवधू, लड़की और दामाद आकर मुझसे कहने लगे कि हमें भी नमाज पढ़ने के कायदे दिखाइये। मैंने उनसे कहा कि मैंने अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं किया। वह तो अपने-आप हो गया। अपनी इच्छा से मैं ऐसा नहीं कर सकती। लेकिन वे मानने को तैयार नहीं हुए। मुझे कब्र के पास ले आये। आश्चर्य की बात यह हुई कि यहाँ कुछ देर रहने के बाद पुनः अपने-आप आंगिक क्रियाएँ होने लगीं। उसी प्रकार मुँह से ध्वनि निकलने लगी। उस ध्वनि को सुनकर परीबानू की पुत्रवधू ने कहा—'ये तो कुरान की आयतें पढ़ रही हैं'।"

ढाका के नवाब के स्टेट में प्रफुल्लचन्द्र घोष नामक एक व्यक्ति नौकरी करता था। अचानक उसकी नौकरी छूट गयी। वह माँ के पास आया और अपनी कठिनाइयों का जिक्र करते हुए कहा—"अब मैं क्या करूँ?"

माँ ने कहा—"तुम्हारा समय ठीक नहीं है।"

प्रफुल्लबाबू ने पूछा—"कब ठीक होगा?"

माँ ने जवाब दिया—"आठ महीने बाद।"

आश्चर्य की बात यह हुई कि इस बीच अनेक प्रयत्न करने पर भी उन्हें कोई नौकरी नहीं मिली। ठीक आठ माह बाद कुमिल्ला के कोर्ट आफ वार्ड में नौकरी मिली।

शशांकमोहन मुखोपाध्याय की लड़की थी जिसका विवाह हो गया था, पर उसका दाम्पत्य-जीवन असफल रहा। बचपन से ही उसमें वैराग्य की भावना थी। फलस्वरूप एक दिन वह माँ के पास आयी। माँ ने उसका नाम गुरुप्रियादेवी रखा, गोकि स्वयं उसे 'दीदी' नाम से पुकारती थीं। इसी प्रकार ज्योतिषचन्द्र नामक एक व्यक्ति माँ के पास आया और वह 'भाईजी' के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

आनन्दमयी माँ अपनी दैवी प्रतिभा तथा विशिष्टता के कारण जनसाधारण को प्रभावित करती रहीं। संतों, विद्वानों, राजनीतिज्ञों का इनके यहाँ आवागमन जारी रहा। जमनालाल बजाज माँ के प्रिय पुत्र थे। जमनालाल बजाज की जबानी माँ की प्रशंसा सुनकर महात्मा गांधी ने अपने यहाँ उन्हें बुलाया था। उस समय वहाँ डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल, आचार्य कृपलानी आदि महारथी थे। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के अलावा जवाहरलाल नेहरू, इन्दिरा गांधी अक्सर उनसे आशीर्वाद लेने आते थे। इसे इन पंक्तियों के लेखक ने भी देखा है। आनन्दमयी माँ के निधन के समय इन्दिरा गांधी उन्हें सम्मान देने के लिए हरद्वार गयी थीं।

आनन्दमयी माँ में एक विशेषता यह थी कि वे दूसरों के मन की इच्छा, कल्पना को आसानी से समझ लेती थीं। कहीं कोई दुर्घटना होने पर उसका आभास उन्हें हो जाता था जिसकी विधिवत् सूचना जनसामान्य को काफी देर बाद प्राप्त होती थी।

एक बार अमूल्यकुमार दत्तगुप्त की पत्नी ने माँ को टसर की साड़ी देकर प्रणाम किया। उनकी इच्छा थी कि इस साड़ी को माँ कम-से-कम एक बार पहन लें, पर उन्हें यह देखकर कष्ट हुआ कि माँ ने उसे स्पर्श तक नहीं किया। उसे उठाकर गुरुप्रियादेवी ने रख दिया।

इस घटना के 2-3 माह बाद माँ का जन्मोत्सव मनाया जा रहा था। इस अवसर पर लोग साड़ियाँ भेंट में दे रहे थे। विभूतिचरण गुह ठाकुरता की पत्नी ने भेंट दी अपनी साड़ी को जबरन पहनाया। लाल साड़ी में माँ साक्षात् भगवती जैसी लग रही थीं। इस समारोह में अमूल्यबाबू की पत्नी भी बैठी थी। वह मन ही मन विभूतिचरण की पत्नी के सौभाग्य की प्रशंसा करने लगी। माँ ने मेरी दी साड़ी पहनी नहीं। इस पर मन में कष्ट अनुभव करती रही। तभी माँ ने उससे कहा—"तुमने जो टसर की साड़ी दी थी, उसे दो बार पहन चुकी हूँ। इसके बाद जिसके भाग्य में थी, उसे दे चुकी हूँ।" यह बात सुनते ही अमूल्यबाबू की पत्नी शर्म से गड़ गयी। खुशी से उसकी आँखें भर आयीं।

इसी प्रकार एक दिन आश्रम में प्रमथबाबू, नगेनबाबू और अमूल्यबाबू बैठे थे। इतने में एक फरवीवाला आया। सिर पर बोझा उठाये वह चारों ओर खरीदनेवाले ग्राहकों की तलाश करने लगा।

तभी माँ ने कहा—"फरवीवाला जिस प्रकार अपने बोझ को ढो रहा है, संसार का बोझ उसी प्रकार तुम लोगों को ढोना चाहिए।"

एकाएक माँ ने प्रमथबाबू से कहा—"पिताजी, मुझे फरवी खिलाइये।"

प्रमथबाबू ने कहा—"यह कौन-सी बड़ी बात है। तुम जितना फरवी खा सकती हो, खा लो।"

माँ ने कहा—"इसकी सारी फरवी खरीद लो।"

फरवीवाला ढाई रुपये में सारा माल बेचने को तैयार हो गया। प्रमथबाबू रुपये देने लगे तभी माँ ने कहा—"पूरी कीमत तुम्हें देने की जरूरत नहीं। आधी तुम दो और आधी नगेन दे।"

प्रमथ और नगेन के अलावा वहाँ तीसरे व्यक्ति अमूल्यबाबू बैठे थे। जब अमूल्यबाबू का नाम नहीं लिया गया तब उन्हें संतोष हुआ, क्योंकि उस समय उनकी जेब में एक पैसा भी नहीं था। अगर माँ इनका नाम साझेदारी में लेतीं तो मुश्किल का सामना करना पड़ता। लेकिन एक कहावत है—होनी होकर रहती है। वही हुआ।

नगेनबाबू ने कहा—"माँ, तुमने हम दोनों को कीमत देने के लिए कहा, पर अमूल्यबाबू को कुछ नहीं कहा।"

माँ ने कहा—"ठीक है। तुम तीनों मिलकर कीमत चुका दो। मुझे आपत्ति नहीं है।"

एकाएक अमूल्यबाबू की ओर देखती हुई माँ ने नगेनबाबू से कहा—"तुमने अमूल्यबाबू को कीमत देने को कहा। जरा उससे पूछो कि उसके पास पैसे हैं ?"

भोलानाथजी अब तक चुपचाप बैठे थे। शायद उन्हें विश्वास था कि अमूल्यबाबू यहाँ खाली हाथ नहीं आये होंगे। उन्होंने माँ के अनुमान को गलत साबित करने की गरज से तथा आनन्द लेने के लिए कहा—"क्या आपके पास पैसे नहीं हैं ?"

अमूल्यबाबू ने कहा—"नहीं।"

भोलानाथ ने पुनः पूछा—"रुपया है शायद ?"

अमूल्यबाबू ने कहा—"नहीं, कुछ भी नहीं है।"

माँ हँसते-हँसते लोटपोट होने लगीं, बोलीं—"जब मैंने सही बात कही तो अन्य लोग भी हँस पड़े। शायद भोलानाथजी अप्रतिभ हो गये।"

आनन्दमयी माँ अन्य संतों की तरह अपने यहाँ आये भक्तों तथा जिज्ञासुओं को नाम जपने की सलाह देती थीं। इस सम्बन्ध में एक बार एक जिज्ञासु ने प्रश्न किया—"नाम जपना तो समझता हूँ। नाम होना कैसा होता है ? क्या होने पर यह समझा जाय कि नाम हो रहा है ?"

माँ ने कहा—"जब देखोगे कि तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध नाम अपने-आप होता जा रहा है, तब देखोगे कि किसी काम के लिए अन्यत्र जाना है, पर नाम तुम्हें जाने नहीं दे रहा है, जब देखोगे कि नाम तुम्हारी इच्छा, कर्म-शक्ति पर अधिकार जमाये बैठा है तब समझ लेना नाम हो रहा है। इसी प्रकार ध्यान करना एक बात है और ध्यान होना अलग बात है। लोग ध्यान करने का प्रयत्नमात्र करते हैं। लेकिन जब सचमुच ध्यान होता है तब समझ में आ जाता है कि इन दोनों में कितना अन्तर है।"

प्रश्न—"मेरे गुरुभाई जब ध्यान करते थे तब उन्हें घंटा-ध्वनि और वंशी-ध्वनि सुनाई देती थी। ज्योति भी दिखाई देती थी। मैंने उससे पूछा था कि ये सब ध्वनियाँ कहाँ से आती हैं, बता सकते हो? उत्तर में उसने कहा था कि मैंने केवल ध्वनि सुनी है, कहाँ से आती है, पता नहीं। इन ध्वनियों का क्या मतलब है?"

माँ—"बता रही हूँ, जब कुण्डलिनी-शक्ति जागृत होती है तब नाभिमूल में जितनी ग्रंथियाँ हैं, वे खुलने लगती हैं। जब ग्रंथियाँ खुलने लगती हैं तब विभिन्न प्रकार के शब्द सुनाई देते हैं और ज्योति दिखाई देने लगती है। एक भी ग्रंथि-भेद होने पर शब्द सुनाई देता है। इसे अनाहत-ध्वनि कहते हैं। यह हमेशा होता रहता है, पर जब तक चित्त स्थिर नहीं होता तब तक यह सुनाई नहीं देती। यही संसार की विभिन्न ध्वनियों की समष्टि है। जैसे शंख, घंटा, घड़ियाल आदि की आवाजें भिन्न-भिन्न हैं, पर एक साथ इन्हें बजाने पर एक प्रकार की आवाज होती है, उसी प्रकार अनाहत-ध्वनि होती है। संसार में ऐसी कोई भी ध्वनि नहीं है जिसके साथ इसकी तुलना की जा सके जब कि संसार की सभी ध्वनियाँ इसी ध्वनि से उत्पन्न हुई हैं। इसी प्रकार अन्य एक ग्रंथि-भेद होने पर ज्योति-दर्शन होता है। यह ज्योति अपार्थिव है। जगत् के किसी भी प्रकाश से इसकी तुलना नहीं की जा सकती। रूप के बारे में यही बात लागू होती है। ग्रंथि-भेद के साथ ही साथ लोगों के संस्कार के अनुसार नाना रूप-दर्शन होते हैं। फिर समस्त रूप में लय हो जाता है। संसार की सभी चीजें एक मूल से उत्पन्न होती हैं। ग्रंथि-भेद होने पर ही सब समझ में आ जाता है। जिनकी समस्त ग्रंथियों का भेद हो गया है, वे ही जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं लय के कारणों को समझ पाते हैं। जिनका आंशिक भेद हुआ है, वे समझ नहीं पाते। इसीलिए पिताजी कहते हैं कि कहाँ से आवाज आ रही है, समझ नहीं पाता। केवल शब्द सुन पाते हैं।"

आनन्दमयी माँ न तो पढ़ी-लिखी थीं और न उन्होंने धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन किया था, पर वे उच्च स्तर के संतों और विद्वानों के प्रश्नों का बराबर उत्तर देती रहीं। एक बार ढाका में दार्शनिकों का सम्मेलन हो रहा था।

प्रसिद्ध दर्शनशास्त्री महेन्द्र सरकार ने प्रश्न किया—"माँ, आपने दर्शनशास्त्र अध्ययन किया है?"

"क्यों पिताजी?"

"आपसे जितने सवाल किये गये और आपने जो उत्तर दिये, वे भी दर्शनशास्त्रों से मिल गये यानी आपका उत्तर दर्शनशास्त्र के योग्य था। यह कैसे संभव हुआ, यही जानने की इच्छा है।"

यह सुनकर माँ अवाक् रह गयीं। कैसे वह ऐसी बातें कह गयीं। वेद, वेदान्त, दर्शन-ग्रंथों को पढ़ने को कौन कहे, देखा भी नहीं है।

माँ ने कहा—"पिताजी, एक विराट् ग्रंथ है। सभी प्रकार के ज्ञान उसके अन्तर्गत हैं। जिसे उस ग्रंथ का पता लग जाता है, उसके लिए आप लोगों के ग्रंथों के विषय को जानना बाकी नहीं रहता।"

यह बात सुनते ही पंडित-मण्डली निःस्तब्ध रह गयी। वे समझ गये कि माँ को दैवी प्रतिभा प्राप्त है। बातचीत के सिलसिले में खण्ड-अखण्ड की चर्चा चलने पर एक जिज्ञासु ने पूछा—"जब तुम अखण्ड रूप में रहती हो तब क्या हम लोगों को देख पाती हो?"

माँ ने गंभीर होकर कहा—"सब बातें सभी के सामने नहीं कहती। सभी बातें लोगों के सामने मुँह से नहीं निकलतीं। तुमने प्रश्न किया है, इसलिए निकल रहा है। शायद मेरी बातें तुम समझ सकोगे। तुमने खण्ड रूप में जो चर्चा की, वह भी मैं ही हूँ जबकि मैं खण्ड नहीं हूँ। तुमने अखण्ड के बारे में जो कहा, वह भी मैं ही हूँ, पर मैं अखण्ड नहीं हूँ। मैं असीम भी नहीं हूँ, सीमा के अन्तर्गत बद्ध नहीं हूँ। मैं युगपत् दोनों ही हूँ। अगर मुझे खण्ड कहोगे तो मुझे सीमा के भीतर बद्ध करना हुआ। लेकिन मेरी सीमा नहीं है, बन्धन नहीं है, दूसरी ओर सभी प्रकार के बन्धन हैं। मैं खा रही हूँ, घूम रही हूँ, यह सब मेरे खण्ड भाव हैं, इसलिए मैं ससीम हूँ और दूसरी ओर मुझे आहार-निद्रा की आवश्यकता नहीं है, अतः मैं सीमा-शून्य हूँ।"

आनन्दमयी माँ का यह नाम सार्थक रहा। कोई भी उनके निकट जाता तो सहज ही आकृष्ट हो जाता था। उनके चेहरे से सर्वदा प्रसन्नता की छटा प्रस्फुटित होती थी। श्री रतनलाल जोशी के शब्दों में—"उनका मुखमण्डल पूर्णचन्द्र की चाँदनी में आभासित था। हमारे मित्रों को सहसा ऐसा अनुभव हुआ कि आसपास आकाश की तरह सब शून्य है, न कोलाहल है, न भीड़भाड़। माँ की संपूर्ण आकृति भी नहीं है, केवल उनका मुख है, करुणा का सुन्दर कलश। आनन्दमयी की आँखों से ममता की किरणें निखर-निखर कर हमारे हृदय-मानस में आलोक की ऊर्मियों की भाँति तरंगित हो रही थीं।"

जस्टिस आयंगरजी जो इस समय मौजूद थे, उन्होंने कहा—"सन्तों की करुणा के मुझे कई अनुभव हैं। महर्षि रमण के यहाँ चिन्ताएँ लेकर जाता था और उनके देखने मात्र से सारी चिन्ताएँ आत्मा के आनन्द में परिणत हो जाती थीं। आज भी मुझे माँ के सान्निध्य में ऐसी ही अनुभूति हो रही है। बड़ा हल्कापन महसूस हो रहा है। लगता है, जैसे मैं कहीं हूँ ही नहीं।"

डॉ० परुलेकर ने इस बात को सुनने के बाद कहा—"मैं अलौकिकता में विश्वास नहीं करता। चमत्कारों को मैं आँख में धूल झोंकनेवाली धूर्तता मानता हूँ। किन्तु आनन्दमयी माँ तो संसार के सारे स्पर्शों से परे, आत्मानन्द में लीन सन्त विभूति हैं। उनके सामीप्य में बड़ी शक्ति है। हमारे एकनाथ महाराज ने कहा है कि

आनन्द की तरंगों से मन के बोझ को हल्का करना हो तो संतों के चरणों में बैठना चाहिए। माँ के समीप आकर मैंने पाया कि जैसे बुझा हुआ चैतन्य फिर से उद्दीप्त हो उठा है।''

डॉ० परुलेकर की बातों का समर्थन परोक्ष रूप में माँ ने एक भक्त के प्रश्न में किया है। भक्त ने पूछा—''माँ, प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी ने कहा है कि आधी रात ही भजन-साधना का वास्तविक समय है, क्योंकि इसी वक्त महापुरुषगण गमनागमन करते हैं। अगर इस वक्त कोई भक्त जप-तप करता है तो वे लोग उसकी सहायता करते हैं।''

माँ ने कहा—''प्रत्येक समय का एक विशेष भाव है और ये भाव पात्र-भेद के अनुसार कार्य करते हैं। जैसे सबेरे एक भाव तो शाम को दूसरा भाव। शाम के वक्त आमतौर पर मन शून्य, रहता है और काफी स्थिर हो जाता है। फलतः इस समय नाम-जप करने का विधान है। इसी प्रकार मध्य रात्रि का एक विशेष भाव, साधन-भजन के लिए अनुकूल होता है। इसके अलावा इन भावों के आविर्भावों को अनुभव किया जा सकता है। विशेष गंध या नाम में विशेष आनन्द की उपलब्धि से महापुरुषों का सान्निध्य या साधु-प्रेरणा प्राप्त की जा सकती है। अक्सर ऐसा होता है कि साधक जब अपने बच्चों को लेकर सोता रहता है तब महापुरुषों के आविर्भाव से बच्चे अचानक चौंक उठते हैं। पर साधकों के लिए डरने की बात नहीं है, कारण साधक के मन की स्थिति अगर भयभीत होने लायक रहती है तो महापुरुष दर्शन नहीं देते। जगत् का विधान इतना सुन्दर है कि भगवान् का कृपा-भांड सर्वदा उन्मुक्त रहता है। पात्रानुसार वह कृपा संचारित होती है। जिसका जितना अधिकार है, उतना वह ग्रहण करता है।''

इसमें कोई संदेह नहीं कि बीसवीं शताब्दी की एक अद्‌भुत महिला संत आनन्दमयी माँ थीं। उन्होंने स्वयं अपने बारे में कहा है—''मैं स्वतः कोई भी कार्य अपनी इच्छा से नहीं करती और न कुछ कहती हूँ। मेरे भीतर से अन्तस्प्रेरणा ही सब कहती और करती है। मेरे भाव कुछ अलग किस्म के थे। भाव का खेल आरंभ होने पर शरीर के भीतर नाना प्रकार की क्रियाएँ आरंभ जो जाती थीं। उन दिनों मैं आहार नहीं करती थी, फिर भी शरीर काफी हृष्ट-पुष्ट था और सिंह की भाँति शक्ति थी। मैं आहार नहीं करती यह बात मेरा चेहरा देखकर कोई नहीं कह सकता था। अक्सर शरीर अकड़ जाता था। हाथ-पैर रक्त-शून्य हो जाते थे। प्रायः मुर्दे की तरह पड़ी रहती थी। अति अल्प आहार या अनाहार करते हुए काफी दिन गुजार चुकी थी। यह सब अपनी इच्छा से नहीं करती थी। सब कुछ हठयोग के कारण होता था। इतना होते हुए भी घर-गृहस्थी का कोई काम बाकी नहीं रखती थी।''

इसके पूर्व गुरुप्रियादेवी का जिक्र किया गया है। गुरुप्रियादेवी को दीक्षा देने के कुछ दिनों बाद माँ ने उनसे कहा—"अब तुम्हें आगे से मुझे अपने हाथ से खिलाना पड़ेगा। न जाने क्यों मेरे हाथ अब खाने के लिए नहीं उठते। यह काम कर सकोगी न?"

गुरुप्रियादेवी ने कहा—"क्यों नहीं?"

इस बातचीत के बाद से गुरुप्रियादेवी उन्हें अपने हाथ से कौर बनाकर खिलाने लगी। माँ की इस आदत को देखकर भारत के कई जगह के लोग अवाक् रह जाते। कभी-कभी कोई प्रश्न कर बैठता—"क्या ये अपने हाथ से नहीं खा सकतीं?"

माँ कहती—"यह हाथ भी मेरा है और तुम्हारे पास जो है, वह भी मेरा है।"

लोग यह नहीं जान पाते थे कि इस क्रिया के पीछे क्या रहस्य है? एक बार रमणीमोहन चक्रवर्ती रात को खाट पर लेटते हुए बोले—"जरा मेरे पैर दबा दो।"

आनन्दमयी माँ उनके पैर दबाने लगी। थोड़ी देर बाद उनका हाथ नीचे गिर पड़ा। रमणीबाबू ने पूछा—"दबाती क्यों नहीं?"

आनन्दमयी माँ ने कहा—"मेरे हाथ उठ नहीं रहे हैं। जाने क्या हो गया है। मैं जान-बूझकर ऐसा नहीं कर रही हूँ।"

ज्ञातव्य है कि तब तक रमणीबाबू अपनी पत्नी को ठीक से पहचान नहीं सके थे। अपने पति के बारे में माँ ने कहा है—"मुझ पर भोलानाथ की सतर्क दृष्टि थी। जिन दिनों वे परदेश में थे, उन दिनों विद्याकूट में रहते हुए मैं कब, कहाँ जाती हूँ, क्या करती हूँ, यह सब जानने के लिए गुप्तचर नियुक्त कर रखा था। मैंने कभी भोलानाथ की अवज्ञा नहीं की। कौड़ी खेलना मुझे अच्छा लगता था। भोलानाथ के मना करने पर मैंने खेलना बन्द कर दिया। इच्छा होने पर खेल सकती थी और भोलानाथ को पता तक न चलता, पर मैंने ऐसा नहीं किया। मैं हमेशा भोलानाथ के आदेशों का पालन करती थी, पर भावावेश के समय गड़बड़ हो जाता था। घर से बाहर अगर निकलना हुआ तो कोई न कोई सुयोग देखकर बाहर निकल जाती थी। दरवाजे पर साँकल चढ़ा देने पर भी कमरे में इस कदर लोटने लगती कि मजबूर होकर दरवाजा खोलना पड़ता था। मेरे शरीर पर अलौकिक क्रियाएँ होती थीं। आसन पर बैठी हूँ, आसन सहित लट्टू की तरह घूम रही हूँ। यह सब इच्छा से नहीं किया जा सकता। उस समय भोलानाथ बाधा नहीं देते थे। एक बार उन्होंने कमरे में बन्द कर दिया था तब मैं फर्श पर लोटने लगी। हाथ की चूड़ियाँ फूट गयीं। शरीर काँपने लगा और अन्त में लस्त होकर चुपचाप पड़ी रह गयी।

"जिन दिनों मेरे शरीर की यह हालत हो रही थी और मेरी बदनामी फैल रही थी, ठीक इन्हीं दिनों भूदेवबाबू की पत्नी एक दिन मेरे घर आकर मुझे उपदेश देने

लगीं। उन्होंने कहा—'ऐसा (कीर्तन में भावविभोर होना) करने से क्या लाभ? इससे बदनामी होती है।' मैंने उनसे कहा कि मैं तो कुछ नहीं जानती। जो कुछ होता है, वह मैं अपनी इच्छा से नहीं करती।

''वास्तविक भावावेश में जो कार्य होता है वह किसीकी इच्छा से नहीं होता। वह अपने-आप हो जाता है। घर में बैठी हूँ, जब घर से बाहर निकलने की स्थिति होती तब हवा में जिस प्रकार पंख उड़ता है, उसी प्रकार यह शरीर घर से बाहर निकल जाता था। शरीर हल्के भाव से ऊपर उठ जाता था। कभी एक पैर के अँगूठे के सहारे नृत्य करती थी। दूसरा पैर टेढ़ा हो जाता था। शरीर कभी शून्य में उठ जाता था। सूई का अगला हिस्सा जिस प्रकार जमीन स्पर्श करता है, ठीक उसी प्रकार शरीर जमीन स्पर्श करता था। पाँच महीने तक आसन-मुद्रा होती थी। इस बीच घर का सारा काम करती थी। बाजितपुर में यह सब होता रहा। लेकिन वहाँ घर के सभी कार्य मशीन की तरह करती थी। खाना-पीना गुरु की इच्छा से करती थी। स्वाद-बोध नहीं होता था। इन दिनों प्रकट करने या छिपाने का झंझट नहीं था। यह भाव गुरु पर निर्भर रहने से आता है।

''मेरे मुख से अक्सर स्तोत्र निकलता था। ये स्तोत्र बातचीत करने की तरह उच्चारित नहीं होता था। वह भीतर से आता था। वह अपने-आप बाहर होता और अपने-आप बन्द हो जाता था। जैसे बन्द दरवाजे के पल्ले खुलते तथा बन्द होते हैं। अधिकतर देखती कि भीतर की ग्रंथियाँ खुल गयी हैं और मुँह से अरबी भाषा प्रकट होने लगी है। अचानक वह बन्द हो जाती। क्यों बन्द हो गयी, यह जानने के लिए इधर-उधर देखती तो एक व्यक्ति को पीछे से आते देखती। अगर कुछ देर और कहती तो वह सुन लेता। सभी स्तोत्र इस तरह आते और बन्द हो जाते थे। जिसे सुनना चाहिए, केवल वही सुन पाता। प्रणव प्रकट होने पर देवभाषा आती है। शरीर की समस्त ग्रंथियाँ जब छिन्न हो जाती हैं तभी प्रणव होता है। मुक्त-ग्रंथियों के भीतर ये स्तोत्र प्रकट होते हैं, इसलिए स्तोत्र प्रकट होने पर भी बातें स्पष्ट नहीं होतीं। आसनादि में जिस प्रकार शरीर की ग्रंथियाँ खुल जाती हैं, उसी प्रकार ग्रंथियों का खुलना आवश्यक है वरना ये सब स्तोत्र प्रकट नहीं होते। मेरे मुँह से केवल संस्कृत के स्तोत्र प्रकट होते थे, ऐसी बात नहीं थी। सभी भाषाओं के प्रकट होते थे। वह इसलिए कि मैं भिन्न-भिन्न देश के महापुरुषों के साथ उनकी भाषा में बातें करती थी।''

बाबा सीताराम ने माँ के बारे में कहा है—''माँ बचपन से ही जीवन्मुक्त, ईश्वरीय चैतन्य में सुजाग्रत आत्मा हैं। वे अपने शैशव से ही आनन्द-वन्दना हैं। 13 वर्ष की अवस्था में उनका ब्याह हो गया, किन्तु गृहस्थ-भोग से वे विरक्त रहीं। विवाह के दिन से ही पति को पिता मानने लगीं और बाद में पति ही उनके प्रथम

शिष्य बने। उनकी कुंडलिनी जाग्रत थी और थोड़े दिनों में उनकी आध्यात्मिक शक्ति सारे देश में विख्यात हो गयी।"

माँ आनन्दमयी के बारे में उनके भक्त चमत्कारपूर्ण कहानियाँ सुनाते हैं। स्वयं मुझे कई पुरुषों तथा महिलाओं ने ऐसी कहानियाँ सुनाई हैं। एक सज्जन बड़े गरीब थे। लड़की विवाह-योग्य हो गयी, पर पास में पैसा नहीं था। उक्त सज्जन के मालिक आनन्दमयी माँ के भक्त थे। न जाने क्या मन में आया कि उन्होंने माँ से अपनी मुसीबतों का रोना रोया।

आनन्दमयी माँ ने कहा—"चिन्ता मत करो। भगवान् जो करता है, ठीक करता है। उन पर भरोसा रखो। तुम्हारी मुसीबतें शीघ्र दूर हो जायँगी।"

कंजूस मालिक को प्रेरणा मिली तथा वर-पक्ष के लोग भी नरम पड़े और उस लड़की का विवाह हो गया। इस सज्जन के मालिक की कपड़े की एक दुकान थी। माँ से अनुरोध करने पर उनका आशीर्वाद मिला और सम्पन्न हो गये।

आनन्दमयी माँ अन्त:प्रेरणा से अनेक असहाय लोगों की सहायता कर चुकी हैं। यह तभी होता है जब उन्हें भीतर से प्रेरणा मिलती है। कभी-कभी जब प्रेरणा नहीं मिलती तब असहाय की भाँति कह उठती थीं—"यही भगवत्-इच्छा रही।"

एक बार गुरुप्रियादेवी के परिवार का एक बालक अस्वस्थ होकर शय्यागत हो गया। बार-बार कै करने के कारण वह बेहद कमजोर हो गया। यह समाचार पाते ही माताजी ने उसे अपने आश्रम में बुलवाया। उसके आने पर खाना परोसा गया। माताजी सामने बैठी रहीं। आश्चर्य की बात यह रही कि जो बालक मुँह में कुछ रख नहीं पाता था, उस दिन उसने घी, भात, मछली वगैरह खाया। आश्रम के भोजन से स्वस्थ हो गया।

श्री ज्योतिषचन्द्र राय जिन्हें सभी 'भाईजी' कहते थे, माँ के कृपा-पात्र थे। इनकी बीमारी का समाचार पाकर उनके घर गयीं। उस वक्त घर पर कोई मौजूद नहीं था।

माँ ने कहा—"जाओ, सामने के तालाब में स्नान कर आओ।"

बुखार से पीड़ित भाईजी माँ की आज्ञा पाकर तालाब में स्नान करने गये। वापस आकर भीगे वस्त्रों को एक कोने में छिपा दिया ताकि घर के लोगों को इस बात का पता न चले वरना वे लोग यही समझेंगे कि स्नान करने की वजह से खून अधिक गिरा है। कपड़े बदलकर वे बिछावन पर लेट गये। थोड़ी देर बाद उन्होंने महसूस किया कि सारा रोग दूर हो गया। वे खाट पर उठकर बैठ गये।

इसी प्रकार एक बार एक सज्जन अपनी लड़की को लेकर माँ के पास आये। लड़की को हल्का लकवा हो गया था। लड़की के पिता ने कहा—"माँ, इस बालिका पर कृपा कीजिए।"

माँ ने कहा—"अगले गुरुवार को लड़की के साथ आ जाना।"

गुरुवार को पिता-पुत्री माँ के पास पहुँचे तब वे सुपारी काट रही थीं। लड़की को एक ओर लिटा दिया गया। माँ ने उसकी ओर एक सुपारी फेंककर कहा—"ले, उठा ले।"

बड़ी मुश्किल से वह सुपारी लड़की उठा पायी। पिता ने समझा कि माँ का आशीर्वाद मिल गया। वे उसे लेकर घर चले गये। दूसरे दिन आकर माँ को प्रणाम करते हुए बोले—"माँ, तुम्हारी महिमा अपरम्पार है। यहाँ से जाने के बाद लड़की को बिस्तर पर लिटा दिया। तभी कुछ देर बाद गली से एक बारात गुजरने लगी। घर के सभी बच्चे बारात देखने के लिए बाहर निकले। वह भी दौड़ी हुई बाहर आयी। यह दृश्य देखकर मैं अवाक् रह गया कि कैसे उसका रोग दूर हो गया।"

एक बार माँ घूमने निकलीं। यह ढाका शहर की घटना है। मैदान में एक बग्घीवाला मिला। उसे रोककर माताजी उस पर बैठ गयीं।

बग्घीवान ने पूछा—"कहाँ चलूँ?"

माँ ने हँसकर कहा—"अपने घर ले चलो।"

माँ के साथ कुछ लोग थे। माँ क्यों अचानक बग्घीवान के घर जा रही हैं, लोग समझ नहीं पाये। जब वहाँ पहुँचे तो देखा कि उसके घर का एक व्यक्ति सख्त बीमार है। माँ कमरे के भीतर जाकर रोगी के बदन पर हाथ फेरने लगीं। देखते ही देखते उसका रोग दूर हो गया।

यह दृश्य देखकर न केवल बग्घीवान बल्कि साथ आये लोग भी चकित रह गये। अब उनकी समझ में आया कि क्यों माँ अचानक यहाँ आ गयीं।

कभी-कभी विचित्र घटना हो जाती है। भोलानाथजी उत्तरकाशी से मसूरी आये थे। उन दिनों निर्मलबाबू सपत्नीक आये थे। सभी लोग धर्मशाला तथा पास के एक मकान में ठहरे थे। यहाँ आते ही निर्मलबाबू बीमार हो गये। माँ ने कहा—"इसका इलाज किसी डॉक्टर से कराओ। बीमार आदमी जब मर जाता है तब लोग कहते हैं कि किसी अच्छे डॉक्टर को दिखाते तो न मरता।"

भाईजी ने कहा—"आज ही तो बीमार पड़ा। होमियोपैथ का एक डॉक्टर देख रहा है। उसकी दवा का असर देखकर ही दूसरे डॉक्टर को बुलाया जायगा।"

इस जवाब को सुनकर माँ चुप हो गयीं। उधर निर्मल की हालत बिगड़ने लगी। उसका चेहरा लाल हो गया। उसने कहा कि माँ को बुलाओ। उसकी पत्नी बार-बार आदमी बुलाने के लिए भेजती रही, पर माँ की इच्छा जाने की नहीं हो रही थी।

3-4 दिन बाद माँ की इच्छा हुई कि अब इस समय कोई कहे तो मैं चल सकती हूँ। ठीक इसी समय भोलानाथ स्वयं आकर माँ को निर्मल बाबू के पास ले गये। अब तक वे बेहोश थे पर मा के आते ही वे तुरंत होश में आ गये और बातें करने लगे।

कुछ देर बाद माँ जब चलने लगीं तब उनका हाथ अपने-आप निर्मलबाबू के मस्तक पर चला गया जिसे कोई देख नहीं सका। निर्मलबाबू इंजेक्शन नहीं लेना चाहते थे। लेकिन उन्हें इंजेक्शन देते ही उनकी मृत्यु हो गयी।

कुछ देर बाद माँ जब चलने लगीं तब उनका हाथ अपने-आप निर्मलबाबू के मस्तक पर चला गया जिसे कोई देख नहीं सका। निर्मलबाबू इंजेक्शन नहीं लेना चाहते थे। लेकिन उन्हें इंजेक्शन देते ही उनकी मृत्यु हो गयी।

शुद्ध मन से माँ का चरण-स्पर्श करने पर लाभ होता था, पर अशुद्ध लोग जब ऐसा करते थे तब तुरत बेहोश हो जाते थे। जिन दिनों माँ बाजितपुर में थीं, उन दिनों श्री भूदेवचन्द्र बसु वहाँ नवाब के स्टेट के मैनेजर थे। उनके अंगरक्षक का नाम शशि था। वह बड़ा चरित्रहीन था। इस बात की जानकारी कम लोगों को थी। उन दिनों माँ भोर में उठकर आँगन में गोबर-पानी छिड़कती थीं और घर का काम करती थीं। तब तक लोग अपने-अपने घरों में खर्राटे भरते थे। फलस्वरूप माँ अकेले काम करती थीं।

एक दिन माँ शय्या त्यागकर आँगन में गोबर-पानी छिड़क रही थीं, ठीक उसी समय शशि आया और खराब नीयत लेकर पीछे से माँ का आँचल पकड़ा। ज्यों ही उसने आँचल का स्पर्श किया त्यों ही 'गों-गों' आवाज करता हुआ जमीन पर गिरकर बेहोश हो गया। माँ ने इस घटना की सूचना भोलानाथ को दी। भोलानाथ आकर उसे होश में लाने लगे। होश में आने के बाद भी वह स्वाभाविक स्थिति में नहीं आया। हमेशा के लिए पागल हो गया।

दूसरों को जीवन-दान देनेवाली माँ आनन्दमयी अपने भोलानाथ को जीवन-दान नहीं दे सकीं। 6 मई, 1938 ई० को उनका निधन हो गया। शायद उनका समय आ गया था। इसे वे पहले ही समझ गयी थीं जब भोलानाथ चेचक से पीड़ित हुए थे।

माँ के भक्तों ने भारत के शहरों में आश्रम खोला है जहाँ भजन-कीर्तन होता है। भारत के प्रसिद्ध सन्त माँ की योग-शक्ति से प्रभावित थे।

27 अगस्त, सन् 1982 के दिन माँ की हालत खराब होने लगी। उस दिन वे किशनपुर (देहरादून) आश्रम में थीं। शाम को 6 बजकर 45 मिनट पर 'नारायण हरि' कहती हुई अनन्तलोक की यात्रा पर चली गयीं।

●
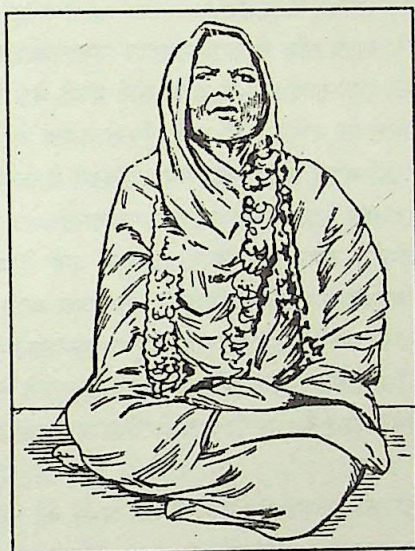
श्री सिद्धिमाता

पुरुषों का भाग्य विचित्र होता है। कुछ लोग पिता के निधन पर उनकी अपार सम्पत्ति के स्वामी बनकर आजीवन ऐश करते हैं। दूसरी ओर अधिकांश लोग अभाव और गरीबी की चक्की पीसते रहते हैं। कुछ अपने श्रम, ज्ञान और पुरुषार्थ के बल पर समाज के सिरमौर बन जाते हैं। इनके अलावा एक प्रकार के ऐसे लोग भी हैं जो परी-कथाओं की तरह नरेश या विश्वप्रसिद्ध व्यक्ति बन जाते हैं।

विक्रमादित्य के यहाँ मातृगुप्त नामक एक कवि थे। सामान्य कर्मचारी। पारखी विक्रमादित्य उनकी सेवाओं से इतने संतुष्ट थे कि उन्हें देने योग्य पुरस्कार अपने राज्य में प्राप्त नहीं कर सके। स्वयं मातृगुप्त भी विक्रमादित्य से निराश हो चुके थे। इन्हीं दिनों काश्मीर राज्य राजाविहीन हो गया। राज्य के प्रधानमंत्री ने चक्रवर्ती सम्राट् विक्रमादित्य के पास पत्र भेजा कि हमें एक ऐसा व्यक्ति दीजिए जिसे हम अपने राज्य का शासक बना सकें।

विक्रमादित्य ने काश्मीर के प्रधानमंत्री के नाम पत्र लिखकर उसे सील-मोहर किया। इसके बाद मातृगुप्त को उक्त पत्र देते हुए विक्रमादित्य ने कहा—"आप इस पत्र को लेकर तुरत काश्मीर चले जायँ। प्रधानमंत्री के अलावा अन्य किसीके हाथ यह पत्र न दें।"

काश्मीर पहुँचकर जब वह पत्र प्रधानमंत्री को दिया गया तो वे सिंहासन से उतरकर बोले—"हम सम्राट् विक्रमादित्य के दूत का सादर अभिवादन करते हुए काश्मीर राज्य का शासक घोषित करते हैं।"

गाजीपुर जिले के पाली गाँव में रामसमझावन नामक ब्राह्मण रहता था। गाँव में एक बीघा जमीन और एक गाय थी। दो छोटे-छोटे बच्चे थे। ज़ीविका चलाने के लिए बंगाल के लालगोला के जमींदार के यहाँ नौकरी करता था। जमींदार महेश-नारायण काशी आये। यहाँ सख्त बीमार पड़ गये। डॉक्टरों ने जवाब दे दिया। साथ में रामसमझावन और उसका आठ वर्षीय बालक रामचरित था। महेशनारायण राय नि:सन्तान थे। तुरत उन्होंने रामचरित को दत्तक पुत्र बना लिया। सारी कागजी कार्यवाही होते ही महेशनारायण परलोक सिधारे। दत्तक पुत्र बनते ही रामचरित का नाम हुआ—श्री योगीन्द्रनारायण। आगे चलकर यही बालक लालगोला के महाराजा राव सर योगीन्द्रनारायण राय, के० टी०, सी-आई-ई बहादुर बने। इन्हीं की कृपा से शान्तिनिकेतन की मुसीबत दूर हुई और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की लाइब्रेरी बाजार में बिकने से बच गयी।

इसी प्रकार सन्तों की श्रेणियाँ हैं। कुछ केवल भक्तों को उपदेश देते हैं, कुछ तन्त्र-मन्त्र के चमत्कार दिखाते हैं, कुछ यौगिक क्रियाओं की साधना करने पर बल देते हैं और बीज-मन्त्र देते हैं। इनके अलावा बहुत कम ऐसे सन्त हुए हैं जिन्हें प्रभु-कृपा से सब कुछ प्राप्त हो जाता है। ऐसे सन्तों में श्री सिद्धिमाता थीं।

डॉक्टर गोपीनाथ कविराज ने इनके बारे में लिखा है—"मैं सन् 1930 से लेकर इनके (सिद्धिमाता) देहावसान-काल (26 अप्रैल, 1943 ई०) तक निरन्तर सम्पर्क में आता रहा। इस दीर्घकाल में इनकी आध्यात्मिक उन्नति के प्रत्यक्ष अनुभव का हमें सुयोग मिलता रहा। साधना की मध्यावस्था में जब ब्रह्म-साक्षात्कार के पूर्व देहभेद करके चिदाकाश में तथा परव्योम में इनका अवस्थान हुआ था, उस समय इनके शरीर में अलौकिक परिवर्तन हो गया था। समस्त देह भगवत्-लीला का एक क्षेत्र बन चुका था। विद्युत्सदृश ज्योति के द्वारा इनके शरीर में नाना प्रकार के मन्त्र, उपदेश तथा देव-देवियों के रूप में प्रकट होते थे। उपस्थित भक्त-मण्डली उसका दर्शन भी करती थी। यह सारी लीला प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती थी। नाना प्रकार की वाणियाँ प्रकट होती थीं, इन्हें 'कायाभेदी वाणी' कहा जाता है। यह व्यापार ब्रह्म-साक्षात्कार के पूर्व कई वर्षों तक चलता रहा।"

यहाँ हम श्री सिद्धिमाता का वास्तविक परिचय देना उचित समझते हैं। उसके बाद उनकी जबानी उनकी कहानी प्रस्तुत करेंगे।

जैसोर (यशोहर—बंगलादेश) जिले के मल्लिकपुर गाँव में वरदाकान्त चटर्जी निवास करते थे। आपकी पत्नी श्रीमती श्यामासुन्दरी और आप दोनों ही

धर्मनिष्ठ थे। आपकी पुत्री, जो आगे चलकर सिद्धिमाता के रूप में परिचित हुईं, सन् 1888 ई०, श्रावण शुक्ल अष्टमी के दिन उत्पन्न हुई थी। बचपन में बालिका का नाम कात्यायनी था। सिद्धिमाता का जन्म अपने पैतृक निवास स्थान में नहीं, बल्कि ननिहाल में हुआ था जो जमालपुर स्थित नैला गाँव में था। आपके पति श्रीमान् कृष्णलोचन मुखर्जी थे। श्री गिरीशचन्द्र मुखर्जी यशोहर जिला के ब्राह्मणडाँगा गाँव के निवासी थे, इन्हीं के पुत्र कृष्णलोचनजी थे।

अब आगे की कथा सिद्धिमाता की जबानी उद्धृत कर रहा हूँ—

''मेरे पिता धर्मप्राण और सज्जन थे। वे सर्वदा पूजा-पाठ से जुड़े रहते थे, त्रिसन्ध्या, गायत्री और गंगा के प्रति उनकी भक्ति थी। माता शान्त प्रकृति की थीं और काम करते समय हर वक्त अपने अंतर में भगवती देवी की कल्पना करती थीं। ननिहाल नैला में मेरा जन्म हुआ था। मेरी माँ अधिकतर ननिहाल में रहती थीं। मैं स्वयं भी ननिहाल में रहना पसन्द करती थी। पाँच वर्ष की उम्र से ही मैं शिव-पूजा करने लगी थी। सोलह वर्ष की उम्र तक सभी प्रकार के व्रत-उपवास करती रही। बारह वर्ष की उम्र में गुरु से दीक्षा ली। गुरुदेव मुझसे स्नेह करते थे। पूजा के मन्त्रों से स्थूल-जगत् के अनुष्ठानों को करती रही। पूजा की सारी विधियाँ गुरुदेव से सीख चुकी थी। माँ मुझे बहुत चाहती थी, इसलिए घर का काम मुझसे नहीं कराती थी। मैं दिन-रात पूजा-पाठ में मगन रहती थी। उन दिनों कभी-कभी देव-देवी के दर्शन होते थे, उस समय विशेष ज्ञान नहीं था। बारह वर्ष की उम्र में एक अदृश्य वाणी सुनने में आयी—'तुम 24 वर्ष की उम्र में काशी जाओगी, वहाँ विभिन्न स्तरों में दर्शन करोगी और वहीं देहावसान होगा। लगभग 55 वर्ष की उम्र में तुम्हारी साधना पूर्ण होगी।' काशी आने पर मेरी साधना में उन्नति हुई। बचपन से ही मुझे देवी-देवता के रूप में सजना अच्छा लगता था। अधिकतर मैं राधाकृष्ण बनती थी।''

जिन दिनों सिद्धिमाता की उम्र 24-25 वर्ष के लगभग थी, उन्हीं दिनों वे अपने माता-पिता और पति के साथ काशी आयीं। फिर वापस अपनी ससुराल नहीं गयीं। इनके पति की इच्छा इन्हें वापस ले चलने की थी। सिद्धिमाता ने कहा कि आपकी इच्छा हो तो आप जा सकते हैं। आपके बाल-बच्चे हैं, मेरा तो कोई नहीं है।

सिद्धिमाता के पति की पहली पत्नी से बच्चे हुए थे। सिद्धिमाता को कोई सन्तान नहीं थी। सिद्धिमाता अपने शरीर को भगवान् का शरीर समझा करती थी और अपने पति को परमब्रह्म समझती हुई उनकी सेवा करती थीं। जब वे ध्यान में व्याकुल हो जाती थीं तब उनका बाह्यज्ञान लुप्त हो जाता था। अक्सर गंगा में गिरकर बहने लगतीं तब पण्डे उन्हें बचाकर किनारे ले आते थे। कमण्डल और पूजा के

सामान न जाने कितनी बार गंगा की गोद में समा गये थे। रसोई बनाते समय कभी-कभी दाल-चावल जल जाते थे। अक्सर ऐसी घटना होने पर पतिदेव नाराज हो जाते तब सिद्धिमाता कहतीं—"मैं कुछ भी नहीं जानती—गोविन्द की जो इच्छा हुई, वही उन्होंने कराया। मैं तो उनकी शोभा देखने में मगन थी। मैं रसोई बना नहीं पाती। क्या करूँ?"

गंगा-स्नान के समय विचित्र घटनाएँ होतीं। सिद्धिमाता गले तक पानी में बैठी स्नान करती थीं। उस वक्त उन्हें अनेक देव-देवी के दर्शन होते। गंगा माता उनकी गोद में आकर बैठ जातीं, उनसे बातें करतीं। उस समय के दृश्यों को देखते समय उनका बाह्यज्ञान लुप्त हो जाता। सड़क पर झूमती हुई घर की ओर रवाना होती थीं। पौष-माघ के महीने में भीगे कपड़ों में घर आती थीं। यह दृश्य देखकर राह-चलते लोग चकित रह जाते थे। अक्सर अपने सूखे वस्त्र घाट पर बैठे पण्डों के पास छोड़ आतीं। होश आते ही वे पुन: घाट पर कपड़े लेने आतीं तब पण्डे उनके कपड़े वापस देते हुए कहते—"माताजी, आज भी आप अपने कपड़े भूल गयी थीं।" अक्सर घर वापस आकर कहतीं—"अरे, मेरी साड़ी कहाँ है?" फिर याद आता—वह तो घाट पर ले गयी थी। घर पर जब ध्यान पर बैठ जातीं तब भी ज्ञान लुप्त हो जाता था। कई बार चोर आये और उनके सामने से सामान चोरी कर ले गये, पर आपको पता नहीं चला।

जब पति महोदय आते और पूछते—"अमुक सामान कहाँ है?"

माताजी कहतीं—"मुझे क्या मालूम? मैं नहीं जानती।"

"अब क्या होगा? बरतन तो एक भी नहीं है।"

माताजी ने कहा—"बाजार से मिट्टी के बरतन ले आओ। उसीमें भोग दूँगी।"

बरतन आने के बाद सिद्धिमाता भोजन बनाने लगतीं। जिस दिन भावावेश में रहतीं, उस दिन मुखर्जी महाशय (पति) को बनाना पड़ता था। भोजन के लिए माताजी को बुलाना पड़ता था। माताजी में एक विशेषता थी। वे हमेशा घूँघट काढ़े रहतीं, भले ही घर में कोई हो या न हो। घूँघट निकालकर आसन पर बैठी रहतीं। शौच जाते समय अक्सर मार्ग में खड़ी हो जातीं। बाह्यज्ञान लुप्त हो जाने के कारण समझ नहीं पातीं कि क्यों ठहर गयी हैं। जब कोई कहता कि आप यहाँ खड़ी क्यों हैं? जाइये न, तब वे कहतीं—"अच्छा, यह बात है।" इसके बाद वे शौच करने जाती थीं।

उनका बाह्यज्ञान कब, कहाँ लुप्त होगा, यह समझना कठिन था। कहीं किसी मन्दिर में दर्शन करने गयीं, वहीं बाह्यज्ञान लुप्त हो गया। इधर उन्हें घर में न देखकर पति महाशय लालटेन लेकर गंगा किनारे या भिन्न-भिन्न मन्दिरों में चक्कर लगाते थे।

इस बारे में सिद्धिमाता ने कहा है—''जब मैं कुछ नहीं करती तब उन्होंने (पति) एक भोजन बनानेवाली पाचिका को रखा। मैंने कहा कि मेरे ठाकुर दूसरों के हाथ का बनाया भोजन नहीं करेंगे। बाद में पाचिका न रखने का निर्णय किया गया। भोजन के प्रति मेरी विशेष रुचि नहीं। जब जिस दिन जो मिलता, वही खा लेती थी। अधिकतर उपवास करती थी। कभी-कभी वे जबरन शरबत या मट्ठा पिला देते थे। जब मैं सोती तब देखती कि मेरे इष्टदेवता मेरी गोद में सो रहे हैं। इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत होने के बाद मेरे पिता का देहान्त हो गया। जब तक माँ जीवित थीं, तब तक वे रसोई बनाती थीं। काशी आने के बाद मैं दर्शन-स्पर्शन में मगन रहती थी। जब किसी मंदिर में जाती तो भगवान् का दिव्यरूप देखती थी। गाँव की सारी सम्पत्ति अपने लड़कों के नाम लिखकर वे काशी आकर मेरे पास रहने लगे। यहाँ वे साइनबोर्ड पेण्टर का काम करते थे। दो-तीन उपन्यास उन्होंने लिखे थे। कवि होने के कारण गीत भी लिखते थे। इन सबसे 60-70 रुपये की आमदनी हो जाती थी। इतनी आय से हमारी गृहस्थी मजे में चल जाती थी। हम लोग संचय नहीं करते थे। महीने के अन्त में जो कुछ बच जाता, उसे गरीबों में बाँट देते थे। मुझे दैनिक चार पैसे, कुछ फल, आधा सेर चावल देते थे। इस प्रकार यहाँ 18 साल गुजर गये। एक दिन वे अचानक बीमार पड़े। आँव की बीमारी हुई और चल बसे।

''भगवान् की कृपा से मैं उनकी बराबर सेवा करती रही। अन्तिम दिन अँधेरे में उनके पास बैठी थी। अचानक देखा कि कमरे के भीतर चाँद निकला है। उस प्रकाश से मेरी आँखें चौंधिया गयीं। उन्होंने कहा—'इतनी तेज रोशनी क्यों है? मेरी आँखें बरदाश्त नहीं कर पा रही हैं।' मैंने सोचा कि मैंने तो रोशनी नहीं जलायी। चौंककर देखा कि मेरे सिरहाने नारायण चतुर्भुज रूप में खड़े हैं। उन्होंने कहा—'इसे मैं अपने में मिला लूँगा।' इस घटना के थोड़ी देर बाद उनका प्राणान्त हुआ। मैंने देखा—वे नारायण में जाकर समाहित हो गये। सूक्ष्म जगत् में रथ, पताका शंख और घण्टे की ध्वनि होने लगी। मैं आनन्द से विभोर हो बैठी रही। शोक-दुःख की जानकारी नहीं हुई। बाद में लोगों ने आकर कहा—'माँ, पिताजी तो चले गये। अब आप क्यों बैठी हैं?' मैंने कहा कि मैं तो कुछ नहीं जानती। तुम लोगों को जो कुछ करना है, करो। बाद में मेरी गुरुमाता को खबर दी गयी। मित्रों को खबर भिजवायी गयी। रात चार बजे अंतिम क्रिया के लिए लोग मणिकर्णिका घाट ले गये। दाह-संस्कार मुझे करना पड़ा था। बाद में श्राद्ध-क्रिया उनके लड़कों ने आकर की थी। श्मशान से लौटने के बाद मैं कमरे का दरवाजा बन्द कर ध्यानमग्न हो गयी। नित्य यही क्रिया करती और गुरुमाता आकर दरवाजा खोलतीं, हविष्य खिलातीं, कभी फल या दूध देती थीं। जब अशौच समाप्त हो गया तब मैं अपने कमरे में चार दिनों तक अनाहार थी। इस प्रकार भोजन में बराबर अनियमितता होने लगी।

"यह घटना खालिसपुर मुहल्लेवाले मकान में होती थी। गुरुमाता अक्सर मेरे घर आकर मुझे खाना बनाकर खिलाती थीं। एक दिन वे बोलीं—'तेरी सेहत बहुत खराब हो गयी है। मैं भी उतनी दूर से रोज नहीं आ पाती। इससे अच्छा है कि मेरे यहाँ चलकर रहो।' इसके बाद मैं वहाँ से हाड़ारबाग मुहल्ले में स्थित गुरुमाता के घर चली आयी।

"जब तक मेरे पति जीवित थे तब तक मैं मंदिरों में दर्शन करने जाती थी। बाद में सब बन्द हो गया। मैं कमरे के दरवाजे बन्द कर ध्यान करती। इस प्रकार धीरे-धीरे मेरी साधना में विकास होने लगा। लोग मुझे 'खालिसपुर की माँ' कहते थे। इन्हीं दिनों महामहोपाध्याय पंडित गोपीनाथ कविराज तथा अन्य दो-चार पंडित मेरे निकट आये थे। मैं विशेष बातें नहीं कर पाती थी, शर्म महसूस होती थी।

"कुछ दिनों बाद मेरी साधना में दूसरे प्रकार से विकास होने लगा। मेरे शरीर में क्रमशः धारावाहिक रूप में देव-द्रेवी की मूर्ति और बीज-मंत्र प्रकट होने लगे। कुछ लोग उन मंत्रों को लिख लेते रहे। भगवान् के चरण-चिह्न तथा ॐकार शरीर में सर्वत्र दिखाई देते थे। मैं जिस कमरे में रहती थी, उसमें भगवान् के चरण और मूर्ति मुझे निरंतर दिखाई देते थे। मेरे अलावा अन्य लोगों को भी दिखाई देता था। कायाभेदवाणी भी प्रकट होती थी। गुरुमाता के घर में आने के बाद लीला-दर्शन अधिक होने लगे। जितने प्रकार के ब्रह्म-दर्शन संभव हैं, वे सब हाड़ारबागवाले मकान में होने लगे।"

सिद्धिमाता के शिष्यों का कहना है कि माताजी के शरीर में विष्णु-चरण और ॐकार बराबर शोभा पाते थे जिन्हें हम लोग देख चुके हैं। माँ की काया से कई लोग बीजमंत्र प्राप्त कर चुके हैं।

यह स्थिति सहसा नहीं हुई है। स्तर-स्तर में हुई है। पहले कुंडलिनी-शक्ति जाग्रत हुई तब अनाहत-ध्वनि होने लगी। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, आज्ञाचक्र और सहस्रार में पद्म विकसित होकर माताजी को दर्शन देने लगे। न जाने कितनी नदियाँ, पर्वत, सप्तलोक, सप्त समुद्रों के दर्शन होकर सब सहस्रार में मिल गये।

साधना में माताजी इतनी आत्मविभोर रहती थीं कि उनका ध्यान अन्य बातों की ओर नहीं जाता था। कमरे में चूहे दौड़ रहे हैं, चारों ओर गंदगी है, यहाँ तक कि उनके शरीर में भी मैल जम जाता था। हाथ की चूड़ियाँ मैली हो जाती थीं। तमाम बदन पर मच्छर खून चूसते रहते, खटमल जगह-जगह पर अड्डे जमाये रहते थे, पर माँ का ध्यान इधर नहीं जाता था। जब भक्त उनके कपड़े-बिस्तर धूप में डालते तब वे कहतीं—"रहने दो, यह सब मुझे नहीं काटते।"

भक्तों की शिकायत पर कहतीं—"शरीर-ज्ञान रहने पर लक्ष्य भ्रष्ट हो जाता है। मेरा ध्यान इधर नहीं जाता। मैं तो सर्वदा अपने ठाकुर को लेकर मगन रहती हूँ। अगर इन कूड़ा-करकटों की ओर ध्यान दूँ तो कैंसे काम चलेगा? मेरा घर, मेरी चटाई, मेरा बिस्तर, यह सब भूल जाती हूँ। भगवान् को भोग देना भूल जाती हूँ। सच पूछो तो अपना कहकर यहाँ मेरा कुछ भी नहीं है।"

जब कोई भक्त उनके व्यक्तिगत जीवन के बारे में पूछता—"माताजी, आपके कई भाई-बहन हैं?"

माताजी कहतीं—"मेरे भाई-बहन कैसा? हाँ, मेरी माँ की पाँच संतानें थीं, पर अब उनसे क्या मतलब? अब तो बस मेरे ठाकुर ही सब कुछ हैं।"

माताजी जब स्थूल रूप में पूजा करती थीं तब पत्र-पुष्प अर्पित करते समय ठाकुर अपने चरण बढ़ा देते थे। नैवेद्य देने पर गोपालजी श्रीकृष्ण के रूप में आकर कहते—"मुझे यह सब खाने दो।" माला-चन्दन देते समय गर्दन बढ़ाकर उसे ग्रहण करते थे। उपदेश के रूप में वे कहते—"सर्वदा एक मन में रहना। मन को पानी की तरह निर्मल बनाकर रखना। रात को अधिक मत सोना। स्वप्न आने पर दोष होता है।"

संभव है, इन्हीं बातों को माँ अपने भक्तों से कहा करती थीं—"साधक को अल्लम-गल्लम नहीं खाना चाहिए। भोजन के दोष से रजोगुण-तमोगुण की वृद्धि होती है। सात्विक भोजन से ही सत्य की ओर मन प्रवृत्त होता है। साधक को चाहिए कि वह कभी राजदरबार में न जाय। हर किसीका दिया भोजन न करे। सभी लोगों के घर जाना उचित नहीं है। विवाह, उत्सव आदि स्थानों में नहीं जाना चाहिए। एकान्त में एकाग्र मन से साधना करनी चाहिए। जो लोग हठयोग करते हैं, उन्हें ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती। भक्तियोग से भगवान् के दर्शन होते हैं। हठयोगियों को सिद्धई प्राप्त हो जाती है, उसके माध्यम से वे चमत्कार दिखा सकते हैं। लोगों की निगाहों में धन्य-धन्य होते हैं। लेकिन लोगों के सामने धन्य होने से काम नहीं चलता। आत्मा की उन्नति होना आवश्यक है। भक्त अपने को हमेशा छिपाता है। जब वह सिद्ध हो जाता है तब वह छिपा नहीं रहता। दो-चार भक्त उसके हो जाते हैं। सब्र से मेवा फलता है। साधना का विकास होने पर भीतर ज्ञान स्थायी होता है। साधक अपने को समझ पाता है। तत्वज्ञान अपने-आप प्रकट होने लगता है। प्रथम अवस्था में कर्मयोग को लेकर सेवा-कर्म करना चाहिए। द्वितीय अवस्था में उदासीन-भाव आता है। तृतीय अवस्था में शरीर-मन का गठन होता है। सर्वदा भगवत्-कथा में प्रीति उत्पन्न होती है। मन की चंचलता दूर होती है। चतुर्थ अवस्था में निर्लिप्त भाव आता है, पर आत्मदर्शन न होने तक स्थिर नहीं रहता। पानी की लहरों की भाँति आता-जाता रहता है। जब भीतरी ज्ञान प्रस्फुटित होता है तब

बाहरी चीजें अच्छी नहीं लगतीं। तत्वज्ञानी पुरुष तत्व की बातों में संयत चित्त से समन्वय करते हैं। आत्महारा होकर भावराज्य में विचरण करते हैं। 'मैं-मेरा' भाव को इष्ट में मिला देते हैं। जब तक मन का लय नहीं होता तब तक चंचलता बनी रहती है।''

आगे आपने कहा है—''आत्म-दर्शन की अनन्त लीला क्या है, इसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। प्रथम सोपान में गणेश-दर्शन होता है। गणेशजी सिद्धिदाता हैं। गणेश की कृपा से कुल कुंडलिनी-शक्ति जाग्रत होती है। उसी आद्याशक्ति की कृपा से मन उनके चरणों में धीरे-धीरे विलीन हो जाता है। अनाहत की ध्वनि होने लगती है। कुंडलिनी-शक्ति जब जाग्रत होती है तब कुछ लोग देख पाते हैं—सर्प की तरह कुंडलिनी वलय के रूप में लिपटी हुई है और धीरे-धीरे खुल रही है जैसे कमल की नाल में रहता है, उसी प्रकार एक नाल में से वह सर्प मणिपुर आदि चक्रों को भेदते हुए सहस्रार की ओर जाता है। कुछ साधक यह भी देख पाते हैं कि एक शक्ति-मूर्ति जो त्रिनयनी होती है, नाभिचक्र में सोयी हुई है। वे उठकर पूछती हैं—'तुम क्या चाहते हो?' अगर उस वक्त कोई भक्त सिद्धाई चाहता है तो वह मिल जाती है। मगर शुद्ध भक्त सिद्धाई नहीं चाहते। वह कहता है—'माँ, मेरा उद्धार करो।' तब कुल कुंडलिनी शक्ति उसका हाथ पकड़कर धीरे-धीरे चक्र भेदकर, सुन्दर दृश्यों को दिखाते हुए सहस्रार में ले जाकर महामिलन का दर्शन कराती हैं। जिन लोगों ने ऐसा दर्शन किया है, वही इसे जानते हैं। सहस्रार में काफी उज्ज्वल ज्योति एवं सहस्रदल में सहस्र बत्तियाँ हैं, उसके भीतर पूर्ण कुंभ रहता है। इस प्रकार प्रत्येक चक्र में जिसकी जैसी बहार है, वह दिखाई देता है। सहस्रदल में स्वर्ण के सिंहासन पर शिव-शक्ति विराजमान रहते हैं। मैंने इसे देखा है—उनके एक पैर के पास सर्प है एवं त्रिनयनी शक्ति मुझे मार्ग दिखाती हुई वहाँ ले गयी थी। इसके अलावा कभी-कभी युगल-मूर्ति भी देखने में आती है। इन सभी चक्रों का दर्शन मैं भलीभाँति कर चुकी हूँ। उनका वर्णन मैं क्या करूँ? अष्टभुजा, चतुर्भुजा, दशभुजा, शत-सहस्रभुजा शक्ति दिखाई देती हैं। भगवान् के विराट् रूप का दर्शन होता है। साधक के लिए किसी भी प्रकार के दर्शन का अभाव नहीं होता। उस वक्त उसे बाहरी दर्शन के प्रति दिलचस्पी नहीं रहती। आत्मदर्शन में मूल से ही शीशे की तरह एक गुब्बारा ऊपर उठता है जो क्रमशः ऊपर जाकर सभी चक्रों को भेद करते हुए सहस्रार तक पहुँच जाता है। वही क्रमशः रूप-परिवर्तन करता है। उसके चारों ओर ज्योति प्रकट होती है। पहले लाल, फिर पीला, नीला और अन्त में श्वेतवर्ण ज्योति। इसके बाद तरह-तरह की ज्योति, जिसका वर्णन करना कठिन है। उस वक्त ही साधक के मन में स्फूर्ति आती है।''

"ठाकुर ने मुझे सब कुछ दिखाया है। मैं उन सभी दृश्यों का वर्णन नहीं कर सकती। करने पर कोई विश्वास नहीं करेगा। अगर कोई कहता है कि मुझे विश्वास नहीं होता तो उसकी और साधक की क्षति होती है। ठाकुर ने यह सब दिखाते हुए कब, किस तरह कैसे साधना करनी चाहिए बताया है।"

अपने साधना-क्रम के बारे में माताजी ने कहा है—"जब प्रथम स्थिति में मैं साधना करती थी तब मेरा मन करता था कि किसी जंगल में चली जाऊँ। घर पर रहने की इच्छा नहीं होती थी। किसी-किसी दिन व्याकुल होकर घर से निकल पड़ती। एक दिन चौसठी माता के मंदिर में गयी तो माताजी ने कहा—'तुम घर पर ही साधना करो। इससे भगवान् के दर्शन हो जायँगे।' इसके आगे और भी बातें कहती रहीं, पर सारी बातें समझ नहीं सकी। इसके बाद से मैं घर पर ही साधना करने लगी। एक दिन मेरे ठाकुरजी ने कहा कि तुम्हें जंगल में जाने की जरूरत नहीं। कलियुग में वहाँ कुछ नहीं है। मन को ही जंगल बनाओ। कुछ लोग जंगल में रहते हैं, तन पर राख पोतते हैं और लोगों के घर-घर जाकर भीख माँगते हुए कहते हैं कि मैं वनवासी हूँ, मुझे भीख दो वरना तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। इसके बाद फिर जंगल जाने का मन नहीं हुआ।"

प्रारंभ में ही उल्लेख कर चुका हूँ कि कुछ लोगों को परी-कथाओं की तरह अपार धन मिल जाता है। यद्यपि ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम है, परन्तु कोरी कल्पना नहीं है। सिद्धिमाता ऐसे सन्तों में अन्यतम रहीं। इन्हें जो कुछ भी प्राप्त हुआ, वह किसी गुरु से नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष रूप से ईश्वर से ही प्राप्त हुआ है। अपने संन्यास लेने के बारे में उन्होंने कहा है—"मैंने किसीसे संन्यास नहीं लिया है। जब मेरा पति-वियोग हुआ तब कुछ दिनों के बाद ठाकुर ने एक गेरुआ वस्त्र देते हुए कहा—'इस कपड़े को पहनो।' मैंने पूछा—'क्यों?' उन्होंने कहा—'तुम संन्यासी हो, तुम्हारा मन संन्यासी हो गया है। आज से तुम परमब्रह्म हो गयी। संन्यासी परमब्रह्म होते हैं। उनके लिए कोई लोकाचार नहीं होता। तुम तो बहुत दिनों से संन्यासी हो गयी हो, पर अब तक तुम्हें यह वस्त्र इसलिए नहीं दिया कि अभी तक तुम्हारे जागतिक पति थे। अब तुम माँ हो, अतएव इस वस्त्र को पहनोगी।' इतना कहने के बाद उन्होंने मेरे कान में कई प्रकार के बीज-मंत्र दिये। जब मेरी उम्र कम थी यानी बचपन में तब अपने कुलगुरु से दीक्षा ली थी। उसी मंत्र को जपती थी। उन दिनों भी मुझे थोड़ा-बहुत दर्शन होता था। मगर एक नियम का पालन कड़ाई से करती थी, गुरु-पूजा बिना किये मैं जल-ग्रहण नहीं करती थी। जिस दिन गुरुमाता सबेरे आ जातीं, उस दिन सबेरे पूजा हो जाती थी वरना चार-पाँच बज जाते थे तब उनकी पूजा करती, उन्हें मीठा और पैसे देती। गुरु के प्रसाद को छोड़कर कुछ नहीं खाती थी। आगे चलकर जब मेरी साधना में उन्नति हुई तब एक दिन

गुरुमाता ने कहा कि तुम्हें न जाने कितने दर्शन हुए हैं, मुझे भी कुछ दिखाओ न। तब ठाकुर की कृपा से गुरुमाता को भी दर्शन हुए। वे प्रसन्न होकर बोलीं—'तुम भगवान् के परम भक्त हो। तुम्हारे कारण मुझे भी ठाकुर के दर्शन हो गये।'

''जिन दिनों मैं गुरुमाता के घर में रहती थी, उन्हीं दिनों लीला प्रारंभ हुई थी। व्रज-गोष्ठ-लीला, वन-विहार, मुनि-पत्नियों के यहाँ गोपाल का भोजन, कालिया-दमन, ब्रह्मा का दर्पचूर्ण, राधा के कलंक का भंजन, सुबल-मिलन, रासलीला, गोवर्द्धन-धारण, राधा का मान-भंजन, धेनुकादि असुर-वध, पूतना-वध, ओखली तोड़ना, माखनचोरी, यशोदा की ताड़ना, यशोदा को विश्वरूप-दर्शन कराना, ठाकुर का मिट्टी खाना, कंस-वध, मथुरा का राजा होना। व्रजलीला के सभी दृश्यों को मैं देख चुकी हूँ। गोपी-विरह देखकर मुझे बड़ा कष्ट हुआ था।''

उन दिनों सिद्धिमाता खालिसपुरावाले मकान में रहती थीं। एक दिन विश्वनाथ मंदिर में दर्शन करने गयीं। मंदिर में एक जगह बैठी थीं। एक साधु ने एक सोने की डिबिया माताजी की ओर बढ़ाते हुए कहा—''इसे लो।''

माताजी ने पूछा—''इसमें क्या है ?''

साधु ने डिबिया खोलकर दिखायी। भीतर एक शिवलिंग और एक ज्योतिर्मय नारायण चक्र था। उस डिबिया को लेकर माँ चल दीं। कुछ दूर आकर सोचने लगीं कि इसे ले जाकर क्या करूँगी। लोग देखकर पता नहीं क्या कहेंगे। यह विचार मन में आते ही वापस लौटीं। उक्त जटाधारी साधु अभी तक मंदिर में मौजूद था। माताजी को देखते ही उन्होंने कहा—''वापस लायी हो ? तब दे दो। मैं विश्वनाथ हूँ। मेरा वास्तविक रूप देखोगी ?''

तुरंत विश्वनाथ ने अपने रूप में माताजी को दर्शन दिया। जटाजूटधारी, मस्तक पर फणवाला साँप, सर्वांग में विभूति, व्याघ्राम्बर-परिधान, पैरों में चाँदी की खड़ाऊँ, एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे में डमरू। यह देखकर माताजी स्तंभित रह गयीं।

घर वापस आकर अपने पति से उन्होंने सारी घटना सुनायी। पति ने कहा—''ऐसी चीज वापस करने क्यों गयीं ? ले आतीं।''

माताजी ने कहा—''पता नहीं। शायद ठाकुरजी की इच्छा नहीं थी।''

दरअसल माताजी काशी में सर्वत्र बाबा विश्वनाथ को देखती रहीं। कहीं भी पैर रखने में उन्हें संकोच होता था। अपनी इस मुसीबत की चर्चा ठाकुर से की तो उन्होंने कहा—''तुम्हारे चरण तो ब्रह्मरूप हैं। डरो मत।''

माताजी ने प्रत्यक्ष रूप में देखा कि काशीपुरी सुवर्णमयी है। शंकर के त्रिशूल पर है, यहाँ गंगा अर्द्धचन्द्राकार हैं। महायोगी शिव काशी-प्राप्त जीवों के कान में तारक मंत्र सुना रहे हैं। माताजी ने प्रत्यक्ष रूप से देखा कि अधिकांश जीव व्यि रूप धारण कर शिव बनते जा रहे हैं। आधी रात को गंगा किनारे एक भूखे को माता

अन्नपूर्णा भोजन दे रही थीं। इस दृश्य को प्रत्यक्ष रूप में सिद्धिमाता ने देखा। कालभैरव पोथी-पत्रा लेकर जीवों का विचार करते हैं और दण्डपाणि दण्ड देते हैं।

पंडित गोपीनाथ कविराज ने सिद्धिमाता के बारे में महत्वपूर्ण सूचनाएँ दी हैं—''परमपद-दर्शन के बाद इनके जीवन में अद्‌भुत परिवर्तन हो गया था। इनकी दृष्टि के सामने सदैव परमज्योति विद्यमान रहती थी जिसके प्रभाव से जागतिक लौकिक पदार्थ देखने में नहीं आते थे। व्यवहार के समय चक्षु खोलकर बातचीत करती थीं परंतु वक्रदृष्टि किये बिना इन्हें संसारी वस्तुएँ दिखाई नहीं पड़ती थीं। स्वाभाविक दृष्टि में सर्वत्र सर्वथा वक्रज्योति का ही दर्शन होता था।

''ये करीब 1910 ई० से काशी में रहती थीं, किन्तु इस दीर्घ काशीवास-काल में न इन्होंने कभी किसी महात्मा का सत्संग किया, न किसी साधु के दर्शनार्थ ही कहीं गयीं। इन्होंने साधारण लौकिक दीक्षा अपनी जन्मभूमि में ली थी, परंतु काशी आने के बाद गंगा-स्नान तथा देव-देवी-दर्शन छोड़कर इन्हें किसी प्रकार के साधु-संग का अवसर नहीं मिला।

''माताजी ने ब्रह्मावस्था-प्राप्ति के पूर्व और महामिलन के बाद मिल-मिश्रण अवस्था में लीलादर्शन किया था। ब्रह्मावस्था के अनन्तर फिर लीला का आस्वादन उन्हें नहीं हुआ। उस समय एकमात्र ब्रह्मसत्ता के ही गंभीर और गंभीरतर स्तरों में क्रमशः प्रविष्ट हुई थीं। उसे एक प्रकार से लीलांतर्गत अवस्था कहना ही पड़ेगा। किन्तु वैष्णव आचार्य जिस नित्यलीला का वर्णन करते हैं, उससे माँ के द्वारा वर्णित लीला का किसी-किसी अंश में भेद है। लीला स्वरूप-शक्ति का खेल है, उसमें संधिनी, संवित्, ह्लादिनी—इन तीन शक्तियों का ही व्यापार रहता है। ह्लादिनी-शक्ति का सारांश महाभाव है। भक्ति आदि उस ह्लादिनी-शक्ति की ही विभिन्न वृत्तियों के नाम हैं। भगवत्स्वरूप और उनकी स्वरूप-शक्ति में परस्पर क्रीड़ा चलती रहती है। उससे शक्ति के आश्रय और विषय दोनों स्थानों में रसास्वादन होता है। स्वरूप-शक्ति के, विशेष रूप से ह्लादिनी-शक्ति के, आश्रय भगवान् हैं। यदि वह शक्ति अंश रूप से निक्षिप्त होती है तो उसके द्वारा अनुगृहीत जीव उसका आश्रय होता है। तब उसके विषय होते हैं—स्वयं भगवान्। इस प्रकार भक्त और भगवान् अनादिकाल से असंख्य प्रकार के रसास्वादनों की क्रीड़ा कर रहे हैं। इस लीला से भगवान् उसका आस्वादन करते हैं एवं भक्तों को कराते हैं और भक्त भी स्वयं आस्वादन करते हैं, भगवान् को भी कराते हैं। यह रसास्वादन-प्रवाह अनादिकाल से आरंभ होकर अनन्तकाल तक चलेगा। इसके आरंभ और अन्त का कुछ भी निर्देश नहीं किया जा सकता। इससे ऊपर कोई अवस्था नहीं है जिसे इस लीला का अतिक्रमण कर जीव अपने पुरुषार्थ के रूप में पा सके। नित्य चक्कर काटनेवाली इस लीला का जो मध्यबिन्दु है, वह लीलातीत कहा जा सकता है, किन्तु वास्तव में वह भी नित्यलीला

के अन्तर्गत है। इस तरह विचार करने पर समझ में आ सकेगा कि माँ के द्वारा वर्णित मिल-मिश्रण अवस्था इससे कुछ भिन्न है। मिल-मिश्रण अवस्था के अनन्तर कुछ आगे बढ़ने पर ब्रह्मरूप में स्थिति होती है। किन्तु वैष्णव-लीला-रसिक कहते हैं कि कूटस्थ अक्षर-ब्रह्म लीलामय पुरुषोत्तम का धाममात्र है अर्थात् पूर्ण ब्रह्मावस्था में—स्वरूप-शक्तिसम्पन्न भगवदवस्था में—पहुँचे बिना नित्य-लीला में प्रवेश नहीं किया जा सकता।

"इन माताजी का जीवन बहुत अद्‌भुत था। ये लौकिक व्यवहार से बिलकुल अनभिज्ञ थीं। वर्तमान युग में इस प्रकार का एकांतप्रिय मनुष्य अत्यंत विरल है। वे साधना में इतनी तन्मय रहा करती थीं कि बाहरी जगत् की इन्हें कोई सूचना रहती नहीं थी। यहाँ तक कि इन्होंने अपने जीवन में मोटर भी नहीं देखी थी। देखतीं भी कैसे? गंगातट से अपने गलीवाले मकान में आते-जाते इन्हें मोटर कभी दिखाई नहीं दी, बाहर ये कभी निकलती नहीं थीं"

❑ ❑ ❑

सच तो यह है कि सिद्धिमाता की साधना और उनका जीवन विचित्र था। उन्होंने न अपने नाम पर कोई सम्प्रदाय, मठ, मंदिर स्थापित किया और न किसी प्रकार के चमत्कार का प्रदर्शन किया। यहाँ तक कि शिष्यों या भक्तों की फौज भी तैयार नहीं की। लेकिन साधना के माध्यम से प्रत्यक्ष रूप में देव-देवियों का दर्शन करना और अपने शरीर पर बीज-मंत्रों का प्रकट करना, महान् घटनाएँ हैं जिस पर आज के भौतिकवादी विश्वास नहीं कर सकते। लेकिन प्रत्यक्षदर्शियों की बातों को झुठलाया भी नहीं जा सकता। पंडित गोपीनाथ कविराजजी की व्याख्या से स्पष्ट है कि सिद्धिमाता को पूर्ण ब्रह्मावस्था प्राप्त हो गयी थी।

माताजी की साधना से प्रभावित होकर कुछ भक्तों ने उनसे दीक्षा देने की प्रार्थना की। दीक्षा के बारे में माताजी ने कहा है—"जब मेरी साधना का विकास हुआ तब ठाकुर ने मुझे आदेश दिया कि तुम अपने अमृत-भाण्ड से लोगों को कुछ बाँट दो। किसी-किसीका उद्धार करो। दीक्षा-प्रार्थियों का आचार्यत्व करो। साधना में उन्नति हो जाने पर कुछ बाँट देना चाहिए। तुम्हारे भाण्ड से अब अमृत गिर रहा है, इसलिए ऐसी आज्ञा दे रहा हूँ।" मैंने कहा—"मेरी इच्छा नहीं होती।" तुरत उत्तर मिला—"इसमें कोई दोष नहीं है। अब तुम ब्रह्म में स्थित हो गयी हो। तुमसे जो लोग दीक्षा लेंगे, उनकी भी उन्नति होगी। विश्वास-भक्ति से जो लोग करेंगे, उनकी उन्नति होगी।" ठाकुर के इस आदेश का पालन मैंने किया है।

जब कोई दीक्षा लेने आता तब कहतीं—"ठाकुर की कृपा होने पर प्राप्त होगी।"

कुछ दिनों बाद उसे दीक्षा देती थीं। माताजी भक्तों के कान में मंत्र नहीं देती थीं। कागज पर लिख देती थीं। भक्त उसे पढ़कर सुनाता और तभी माताजी कह देती थीं—"दीक्षा हो गयी।"

अक्सर ऐसा भी हुआ है कि बीज-मंत्र उनके शरीर में प्रकट हो जाता जिसे भक्त लिख लेते थे। कई भक्त उनके मस्तक पर ॐकार और राधाकृष्ण की युगल-मूर्ति के दर्शन उसी वक्त कर लेते थे। यह देखकर वे मंत्रमुग्ध हो उठते थे।

माताजी में एक विचित्र प्रवृत्ति उत्पन्न हो गयी थी। वे एक वर्ष तक अनाहार रहीं। इस बीच उन्हे कोई रोग या कमजोरी उत्पन्न नहीं हुई थी। केवल कभी-कभी वेदाना का रस ग्रहण करती थीं। स्वधाम जाने के तीन-चार माह पूर्व उन्होंने रस लेना भी बन्द कर दिया। केवल ईख का रस ले लेती थीं। कहतीं—"भूख नहीं है। ब्रह्म-अग्नि के तेज से भूख समाप्त हो गयी है।"

26 अप्रैल, सन् 1943 ई०, सोमवार कृष्ण सप्तमी के दिन उनका तिरोधान हुआ था। आश्चर्य की बात यह है कि प्रसिद्ध सन्तों में आपका नाम गुमनाम ही रहा। केवल उच्चस्तर के कुछ साधक आपकी साधना से परिचित रहे।

शोभा माँ

त्रिपुरा जिले का एक नगण्य गाँव जिसका नाम है—कुण्डा। गाँव की दक्षिण दिशा में एक गहरा तालाब है। कहा जाता है कि प्राचीनकाल में यह एक विस्तृत कुण्ड था। इसी कुण्ड के नाम पर गाँव का नाम कुण्डा हुआ है। तितास नदी के किनारे स्थित इस गाँव में अधिकांश शिक्षित व्यक्ति रहते हैं।

गाँव के एक ओर राहा-परिवार की झोपड़ी है। चारों ओर साफ-सुथरा, फूस की झोपड़ी, खुला हुआ वातावरण। अचानक एक दिन एक ब्राह्मण इस परिवार में अतिथि के रूप में आया। घर में एक उदास बालक को देखकर उनके मन में दया उत्पन्न हुई। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि माँ के निधन हो जाने के बाद से वह बराबर उदास रहता है। माँ को खोने का दर्द भुला नहीं पा रहा है। न जाने क्या सोचकर ब्राह्मण ने अपने सामानों के ढेर से श्री काली माता का एक चित्र देते हुए बालक से कहा—''बेटा, चिन्ता करने की जरूरत नहीं। लो, माँ के इस चित्र की भक्ति-भाव से नित्य पूजा करते रहना। इससे तुम्हें माँ मिल जायेगी। मातृ-स्नेह से तुम्हारा हृदय भरपूर रहेगा।''

चित्र को लेकर बालक मंत्रमुग्ध दृष्टि से देखता रहा। संभवत: उस चित्र में उसे जगन्माता का साक्षात् दर्शन प्राप्त हुआ। उसी दिन से उसकी उदासी में परिवर्तन

होने लगा। स्वर्गीय माँ के लिए अब उसका रोना बन्द हो गया। इस घटना के बाद से वह नित्य उस चित्र की पूजा करने लगा। यहाँ तक कि स्कूल से कॉलेज और वहाँ से जहाँ वह नौकरी करने गया, उस चित्र को अपने साथ लेता गया। वह चित्र आज भी वाराणसी स्थित संत मंदिर में सुरक्षित है।

बालक धीरे-धीरे बड़ा हुआ। नौकरी करने लगा और समय पर विवाह हुआ। इसके पूर्व बड़े भाई का विवाह हो गया था। घर में भाभी, भाई और भतीजे थे।

शनिवार, कृष्णपक्ष की पंचमी तिथि, 26 फरवरी, सन् 1921 को भोर के वक्त जब सारा गाँव नींद की गोद में था तब सुकुमार राहा की भाभी ने एक स्वप्न देखा। भाभी को यह ज्ञात था कि मेरा देवर श्री काली माता के चित्र की पूजा बिना किये, पानी नहीं पीता। काली माता के कट्टर भक्त हैं।

भाभी ने देखा कि सुकुमार के शयन-कक्ष में काली माता का जो चित्र एक आसन पर रखा रहता है, उस चित्र से काली माता एक शिशु को लेकर बाहर आयीं। शिशु के तन पर गर्द और कीचड़ लगे हैं। इधर चित्र में काली माता को न देखकर बेचैनी से सुकुमार राहा इधर-उधर खोजने लगा। अचानक उसकी निगाह भूमि पर पड़े उस शिशु पर पड़ी। शिशु के एक हाथ को पकड़ते हुए सुकुमार ने कहा—"भाभी, देखो तो यह पगली न जाने कहाँ से तमाम बदन में कीचड़ पोत आयी है।" इतना कहकर उन्होंने बच्चे को गोद में उठा लिया।

और तभी भाभी की नींद खुल गयी। पुरानी परम्परा के अनुसार भाभी को यह विश्वास हो गया कि भोर का सपना झूठ नहीं होता। देवरानी गर्भवती है। आजकल पीहर गयी हुई है। शायद उसे कन्यारत्न की प्राप्ति हुई है। सुकुमार जब नित्य कर्म से खाली हुए तब भाभी ने अपने स्वप्न का विवरण देते हुए कहा—"लगता है, देवरानी को लड़की हुई है।"

इस बातचीत के डेढ़ घण्टे बाद सुकुमार बाबू के यहाँ एक हरकारा यह समाचार लेकर आया कि आज भोर के समय दीदी को कन्यारत्न की प्राप्ति हुई है।

धीरे-धीरे लड़की बड़ी होने लगी। अन्न-प्राशन के समय उसका नाम रखा गया—शोभा। शोभा का जन्म ननिहाल में हुआ था। उसके नाना योगेन्द्रनाथ पालित अत्यन्त धार्मिक पुरुष थे। ज्ञातव्य रहे कि शोभा माँ के गुरुदेव की जन्म-भूमि बामै गाँव था जो बानियाचांगा (शोभा माँ की ननिहाल) गाँव से पाँच मील दूर है। शोभा के नाना के वे मित्र थे। यह तब की बात है जब सन्तदास महाराज ने संन्यास नहीं लिया था।

बचपन से ही मोहक और सुन्दरी होने के कारण न केवल घर के लोग ही नहीं, बल्कि गाँव के लोग भी उसे गोद में उठाकर प्यार करते थे। जब शोभा माँ 14वाँ साल पूर्ण करके 15वें में गयी तब एक विचित्र घटना हुई। पिता श्री सुकुमार ने सन्तदास महाराज से दीक्षा लेने का निश्चय किया। यह समाचार शोभा से छिपा नहीं

रहा। अचानक शोभा के मन में विचार उत्पन्न हुआ कि वह भी सन्त महाराज से 'नाम' ले। इस घटना के बारे में उन्होंने जो कहा है, वह यों है—

"28 आषाढ़, सन् 1936। इस दिन जब मेरी नींद खुली तब मेरे मन में किसी प्रकार का संशय नहीं था। अपूर्व शान्ति से मेरा हृदय परिपूर्ण था। यह कैसे हुआ, मुझे पता नहीं। शायद कृपामय की कृपा से हुआ।

बिस्तर से बाहर आते ही मैंने पिताजी से कहा—"पिताजी, मैं बाबाजी महाराज से 'नाम' लूँगी।"

पिताजी बोले—"सच?"

"हाँ, पिताजी।"

पिताजी ने प्रसन्न होकर कहा—"तब जल्दी तैयार हो जाओ। आठ बजे मैं तुझे लेकर रवाना हो जाऊँगा।"

उस समय मेरी विचित्र हालत हो गयी। आनन्द के कारण न जाने कैसी हो गयी। जमीन पर पैर नहीं पड़ रहे थे।

ठीक आठ बजे पिताजी मुझे साथ लेकर चल पड़े। चलने के पहले पूजा-घर में जाकर प्रार्थना की थी—"हे माँ काली, तुम मुझे बाबाजी महाराज से मिला दो।" इस प्रार्थना से ही मेरा मन भर गया था। लगता था जैसे माँ काली हँस रही हैं।

सवा आठ बजे हम महेशबाबू के प्रांगण में पहुँचे। मुझे देखकर बड़े दादा (ब्रह्मचारी शिशिरकुमार राहा) बड़े प्रसन्न हुए। मेरा हाथ पकड़कर बाबाजी महाराज के पास ले चले। चलते समय पिताजी ने गुरु-दक्षिणा देने के लिए मुझे दो रुपये दिये।

बड़े दादा के साथ आकर मैंने देखा कि वहाँ दीक्षा लेनेवालों की अपार भीड़ है। बाबाजी ने दादा से पूछा—"क्या है?"

दादा ने कहा—"यह नाम लेगी।"

दीक्षार्थियों में आलोना होने लगी। एक ने कहा—"अभी नहीं होगा। अनेक दीक्षार्थी यहाँ बैठे हैं। नाम लेना था तो पहले आना चाहिए था।"

मुझे यह सब बातें अच्छी नहीं लगीं। मैं चुपचाप बाबा पर निर्भर होकर खड़ी रही। देखूँ, बाबा क्या कहते हैं।

बाबाजी ने दादा से कहा—"एक टुकड़ा कागज ले आओ।"

उस वक्त की हालत मैं ठीक से समझ नहीं सकती। आवेग, आनन्द सब कुछ का एक अपूर्व समावेश हो गया था।

कागज आया। उन्होंने कलम से कुछ लिखा। इसके बाद उन्होंने मुझे बुलाया। सभी दीक्षार्थी अवाक् रह गये। घर के बाहर जो लोग खड़े थे, वे भी चकित रह गये। बाबाजी की व्यवस्था लोग गौर से देख रहे थे। लोग दीक्षा के लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं और असमय में आयी नाम-प्रार्थी को पहले नाम दे रहे हैं।

मैं धीरे-धीरे उनके निकट आयी तो बाबाजी महाराज ने मधुर स्वर में कहा— "पगली माई, अपने बालों को ठीक से बाँध ले। खुले बालों से कार्य सिद्ध नहीं होता।"

उन दिनों मेरे केश छोटे-छोटे थे। जल्दी से दोनों हाथों से लपेट लिया। इसके बाद बाबाजी महाराज ने बड़े स्नेह के साथ एक हाथ मेरी पीठ पर और दूसरे हाथ से मंत्र लिखे कागज को मेरे सामने किया। मुझे कहा गया कि उनके साथ-साथ मैं मंत्र का उच्चारण करूँ। वे अपूर्व स्वर में पाठ करने लगे। मैं उनके साथ-साथ उच्चारण करती गयी। एक अपूर्व आनन्द से मेरा शरीर पुलकित हो उठा। तीन बार पाठ करवाने के बाद उस कागज को मुझे सौंपते हुए उन्होंने कहा—"इसमें तुम्हारा इष्ट मंत्र भी है। सावधानी से रखना।"

कागज लेने के बाद मैंने बाबाजी महाराज को प्रणाम किया। वे एक खाट पर बैठे थे, उसके सामने एक छोटा स्टूल था। उठते समय देखा कि स्टूल में कमल की तरह दोनों पैर शोभायमान हैं। मैं पहले देख और सुन चुकी हूँ कि बाबाजी महाराज क़िसीको पैरों में हाथ लगाने नहीं देते। अगर कोई जबरन हाथ लगाता है तो नाराज हो जाते हैं, इसलिए क्या करूँ, समझ न पाने पर प्रश्नसूचक दृष्टि से बाबाजी महाराज की ओर देखा। सम्मतिसूचक भाव से उन्होंने अपना सिर हिलाया। फिर क्या पूछना? जी भरकर मैंने उन चरणों में हाथ लगाकर प्रणाम किया। प्रणाम करने के बाद पिताजी से प्राप्त दोनों रुपये चरणों के पास रख दिये।

प्रणाम कर जब उठने लगी तब सुना कि अधिकांश दीक्षार्थी मुझे जल्द बाहर चले जाने के लिए कह रहे हैं, क्योंकि मेरे कारण उन्हें दीक्षा लेने में देर हो रही है। मैं बाबाजी महाराज की ओर देखती हुई बाहर चली आयी। बाहर आने पर बोध हुआ कि अब तक मैं अत्यन्त परिचित स्थान में थी, अब अपरिचित स्थान में आकर खड़ी हुई हूँ। मैं जैसे होश-हवास खो बैठी थी। कौन है, कौन नहीं है, किसीके साथ आयी थी, यह सब समझ नहीं पा रही थी। ठीक इसी समय पिताजी की आवाज सुनाई दी।

"शोभा, जल्द घर चलो। मैं भी दीक्षा लूँगा।"

मैं अवाक् रह गयी। यह दृश्य देखकर पिताजी ने कहा—"तुझे आश्चर्य हो रहा है न? स्वयं मेरे मन की अवस्था भी इसी प्रकार की हो गयी है। बहरहाल, जल्दी चल। अभी घर जाकर तेरी माँ को लाना है।"

मैंने कहा—"पिताजी, बाबाजी महाराज से नाम लेने के पश्चात् मैंने उनसे निवेदन किया था कि मेरे पिताजी को भी दीक्षा दीजिए।"

पिताजी ने कहा—"ये लोग अन्तर्यामी होते हैं, शायद तेरी बात ठीक है।"

इसके बाद पिताजी माँ को साथ ले जाकर बाबाजी महाराज से दीक्षा लेकर आये।"

शोभा माँ के गुरुदेव कितने महान् पुरुष थे, इस बारे में एक घटना का जिक्र करना अप्रासंगिक न होगा। शोभा माँ ने इस घटना के बारे में लिखा है—"दुर्गा-पूजा के उपलक्ष्य में बरकान्ता के स्कूल बन्द हो गये थे। पिताजी ने निश्चय किया कि कुछ दिन गाँव चलकर रहा जाय। इस समाचार को सुनते ही मन प्रसन्न हो उठा। कब रवाना होंगे, इस बात की फिक्र सताने लगी। भोजनादि करके हम लोग तैयार हो गये। ठीक 8 बजे बग्घी पर बैठे। पिताजी को स्कूल के सभी मास्टर बिदा देने आये थे। वे तालाब के उस पार गाड़ी पर बैठेंगे। हम लोग रवाना हुए। मैं, माँ, हेना, संध्या और गौर (उन दिनों गौर 7 महीने की थी।) गाड़ी पर थे। इसके अलावा तमाम असबाब थे। तालाब के उस पार की सड़क काफी ढालुआ थी। सामानों का बोझ गाड़ी सम्हाल नहीं सकी और वह एक ओर तिरछे ढंग से लुढ़की। मैं, हेना और संध्या तो उछलकर गाड़ी से बाहर आ गयी, पर माँ जब गौर को गोद में लेकर निकलने लगी तब विचित्र घटना हुई। उनके हाथ से गौर पावदान पर गिरी और तभी ऊपर से सन्दूक नीचे की ओर गिरा। अचानक सन्दूक नीचे न गिरकर शून्य में अटक गया। माँ ने नीचे आकर झटपट गौर को ज्योंही गोद में उठाया त्योंही शून्यस्थित सन्दूक नीचे आवाज के साथ गिरा।"

यह दृश्य तालाब के उस पार स्थित खड़े पिताजी, आसपास के लोगों ने देखा। सभी दौड़े हुए आये। सन्दूक के चमत्कार की घटना सुनकर लोगों ने दाँतोंतले अँगुली दबा ली। लोग कहने लगे—"इस तरह का दृश्य हमने न कभी देखा और न सुना। मध्याकर्षण-शक्ति भी सन्दूक को नीचे नहीं गिरा सकी। हम लोगों को समझते देर नहीं लगी कि यह सब बाबाजी महाराज की कृपा से हुआ है। गुरु-शक्ति पर विश्वास करना चाहिए। गुरु-शक्ति असाधारण होती है।"

शोभा माँ अक्सर अपने भक्तों से कहा करती थीं—"गुरु और इष्ट एक ही है। जो व्यक्ति इष्ट-बुद्धि से गुरु-सेवा तथा गुरु-वेदान्त-वाक्य द्विधाहीन चित्त से मानकर चलता है, उसे इष्ट-सालोक्य, सारूप्य और सायुज्य प्राप्त होता है।

जीव के कल्याण के लिए ही इष्ट गुरु के रूप में आकर जीव को पुनः उनके साथ मिला देते हैं। तुम लोग उन्हींके यहाँ से आये हो और अन्त में उन्हींके निकट जाना है।

अर्थ के द्वारा गुरु को न तो वश में किया जा सकता है और न उनके मन पर विजय प्राप्त की जा सकती है। उन्हें बन्धन में बाँधा भी नहीं जा सकता केवल भक्ति द्वारा समझा जा सकता है, क्योंकि अन्त में उन्हीं में लीन होना पड़ता है।

❑ ❑ ❑

गुरु से नाम प्राप्त करने के बाद से शोभा निरन्तर जप करती रही। परिणाम-स्वरूप उसे बार-बार मूर्च्छा आने लगी। उसकी यह हालत देखकर घर के लोग परेशान हो गये। रोग समझकर इलाज शुरू किया गया। कुछ लोगों ने शोभा की इस बीमारी को भूत-प्रेत की बाधा समझा। किसीके मन में यह बात नहीं आयी कि यह

साधना का एक क्रम है। शोभा नाम जपते समय अपने हृदय पर 'ॐ' तथा 'माँ' शब्द अँगुली से लिखती थी और तभी भावावेश में आ जाती थीं जिसे लोग रोग समझने लगे थे।

इस घटना के कुछ दिनों बाद शोभा अपने कमरे में बैठी कोई पुस्तक पढ़ रही थी। एकाएक कमरे में उज्ज्वल प्रकाश हुआ और उस प्रकाश में गुरुदेव दिखाई पड़े। उन्होंने शोभा से कहा कि जाओ, पूजा-घर में बैठकर जप करो।

पूजा-घर में आकर वह आसन पर बैठ गयीं और जप करने लगीं। कुछ ही देर में उसका बाह्यज्ञान लुप्त हो गया। माँ तथा पिताजी यह दृश्य देखकर डर गये। शोभा की इस दशा को उन्होंने प्रेत-बाधा समझा।

शोभा जब भी जाप करने बैठती तब दोनों जून गुरुदेव प्रकट हो जाते थे। यहाँ यह बताना समीचीन होगा कि शोभा को नाम देने के चार माह बाद उनका शरीरान्त हो गया था। वे शोभा के निकट सूक्ष्म रूप में आते थे। वे नित्य आकर उसे आरती तथा भोग देने की विधि बताते थे। विग्रह शयन, उत्थान के मंत्र और दीक्षा देने की प्रणाली समझाते थे। अगर किसी दिन अधिक देर तक वह सोती रहती तो स्वयं आकर उसे जगाते थे।

एक दिन शोभा से कहा गया कि वह गुरुदेव तथा ठाकुरजी की आरती करे। थोड़े देर बाद खड़े लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा कि वह गुरुदेव-ठाकुरजी के अलावा चारों ओर घूम-घूमकर आरती कर रही है। आरती समाप्त करने के बाद उससे कारण पूछा गया तो उसने कहा—"आरती आरम्भ करते ही श्रीराधा, कृष्ण, ब्रह्मा, महेश्वर आदि अनेक देवी-देवताओं के साथ दादागुरु (श्री रामदास काठिया बाबा) और बाबाजी महाराज (श्री सन्तदास बाबा) मौजूद थे, इसीलिए सभी लोगों की आरती करती रही।"

पौष-संक्रांति के दिन शोभा जब ठाकुर को भोग देने गयी तो देखा—केवल भात और आलू का भर्ता है। इस अन्न का भोग कैसे लगाती? दुःख के कारण उसकी आँखें छलछला आयी। जब तक वह अपने ठाकुर को भोग नहीं देती तब तक स्वयं नहीं खाती।

इसी ऊहापोह में थी कि इसी समय ठाकुर श्रीकृष्ण प्रकट होकर बोले—"मैं भक्तों का प्रेमी हूँ। बेकार दुःख कर रही हो। मैं अच्छा-खराब दोनों ही प्रकार के भोजन कर लेता हूँ। बस, भक्ति-भाव से दिया जाय।"

इतना कहने के बाद श्रीकृष्ण भोजन करने लगे और शोभा उनकी आरती करने लगी।

पास ही पिताजी बैठे भोजन कर रहे थे। शोभा के साथ हुई घटनाओं की उन्हें जानकारी नहीं हुई। उन्होंने देखा—शोभा की आँखों में आँसू हैं और हाथ हिला-

हिलाकर आरती कर रही है। वे तुरत अपने पड़ोसी डॉ० सतीशचन्द्र नन्दी के यहाँ गये और उन्हें अपने साथ ले आये। दोनों व्यक्ति देर तक यह दृश्य देखते रहे।

बाद में पूछने पर शोभा ने सारी घटना सुनाई। यह दृश्य केवल शोभा ने देखा। पिता तथा अन्य लोगों ने आरती करने का ढंग देखा। पिता को इस बात का अफसोस हुआ कि पास बैठे रहने पर भी वे भगवान् को नहीं देख सके।

उनकी यह कामना कुछ दिनों बाद पूरी हुई। एक दिन उन्होंने शोभा से भोग देने के लिए कहा। भोग देने के बाद देखा गया कि पता नहीं किसने थाली की सामग्री सानकर खायी है। दूध की कटोरी खाली है। अन्न पर अंगुलियों के छाप हैं।

इसके बाद प्रतिदिन इस तरह की घटनाएँ होने लगीं। किसी दिन अन्न पर हस्ताक्षर या ॐकार या गुणा का चिह्न लिखा रहता था। कभी बाबाजी महाराज की मूर्ति के मुँह में अन्न लगा दिखाई देता। इस प्रकार की घटनाओं को देखकर लोग आश्चर्य करने लगे। लोगों को यह समझते देर नहीं लगी कि शोभा उच्चस्तर की साधिका बन गयी है।

शोभा माँ जहाँ जातीं, वहीं इस प्रकार की घटनाएँ हो जाती थीं। बाहरी लोगों को आश्चर्य होता, परन्तु घर के लोग अब चकित नहीं होते थे। एक बार शोभा माँ बाबाजी महाराज की तरह समाधि-अवस्था में आसन से नीचे उतर आयीं। रेशमी आसन पर दो सुन्दर पदचिह्न थे। पिता ने सोचा—यह बाबाजी महाराज की कृपा है। बातचीत के सिलसिले में अन्य लोगों ने इस बात को स्वीकार नहीं किया। लड़की के पैरों से उन चिह्नों को मिलाया गया। जितनी बार मिलाया गया, उतनी बार पदचिह्न के छाप शोभा माँ के पैरों से बड़े ज्ञात हुए। लेकिन पिताजी के मन से शंका दूर नहीं हुई।

दूसरे दिन पूजा-घर से बाहर निकलते ही शोभा माँ ने अपने पिताजी से कहा—"पिताजी, बाबाजी महाराज ने कहा है—सुकुमार व्यर्थ में क्यों कष्ट पा रहा है, उसे कहना कि ये पदचिह्न मेरे ही हैं। उसे लालचन्दन से रँगकर पूजा किया करे।"

यह बात सुनकर पिता हर्ष से उछलते हुए 'जय गुरु-जय गुरु' कहने लगे। उक्त पदचिह्न आज तक वाराणसी के सन्त-मंदिर में पूजित हैं। वाराणसी में शोभा माँ ने अपने पूज्य गुरुदेव सन्तदास बाबाजी महाराज के नाम पर गुरुबाग के समीप सन्त-मंदिर का निर्माण कराया। केवल यही नहीं, उस कालोनी का नाम सन्त नगर रखा गया। मंदिर तक जाने वाली सड़क का नाम संतदास वीथी है। आश्रम का नाम संत आश्रम है जहाँ संत विद्यालय स्थापित है। यहाँ प्राइमरी स्कूल के बालक-बालिकाएँ पढ़ते हैं।

❑ ❑ ❑

शोभा माँ की अलौकिक प्रतिभा की ख्याति सुनकर पंडित गोपीनाथ कविराज इनका दर्शन करने के लिए बरकान्ता गये। बात यों हुई कि कविराजजी जिन दिनों

हरिद्वार में थे, उन दिनों संतदास बाबाजी के शिष्य शिशिरकुमार राहा से उनकी मुलाकात हुई।

शिशिरकुमार राहा रिश्ते में शोभा माँ के ताऊ के लड़के थे। वे शोभा माँ के जन्म के काफी पहले संतदास बाबा के शिष्य बने थे। शिशिरकुमार के प्रयत्नों से शोभा माँ को बाबाजी से नाम प्राप्त हुआ था।

आगे चलकर जब शोभा माँ में अलौकिक प्रतिभा उत्पन्न हुई तब आप उनके क्रिया-कलापों को बराबर अपनी डायरी में लिखने लगे। इसी डायरी को पढ़कर कविराजजी शोभा माँ से मिलने के लिए उत्सुक हुए।

कविराजजी लिखते हैं—"उन्हीं दिनों सन्तदास बाबाजी के एक शिष्य ब्रह्मचारी शिशिरकुमार राहा भी हरिद्वार में मौजूद थे। वे नित्य मुझसे मिलने आया करते थे। ब्रह्मचारी शिशिरकुमार राहा एक परमभक्त और धर्मप्राण व्यक्ति थे। 28 मार्च, सन् 1938 के दिन अचानक एक दिन उन्होंने कहा—"मेरी एक चचेरी बहन के जीवन में आध्यात्मिक परिवर्तन हुआ है।"

आगे आपने कहा—"उसका (बहन को) 17-18 वर्ष की उम्र में ही ब्रह्म से साक्षात्कार हुआ है। इन दिनों उसकी उम्र 20 वर्ष है। बहन को सन्तदास बाबाजी से नाम-दीक्षा प्राप्त हुई थी, पर दीक्षा (मंत्र) नहीं हुई है। नाम-दीक्षा के बाद धीरे-धीरे अन्तर से सभी प्रकार के आवरण दूर हो गये और 'ब्रह्म साक्षात्कार' हुआ।"

इतनी कम उम्र में ब्रह्म से साक्षात् होने की बात पर मैं विश्वास नहीं कर सका। उनके पास बहन द्वारा लिखित एक डायरी थी। उसे पढ़ने के बाद उनकी बहन के अनुभव की बातें जान सका। उनका दर्शन करने की इच्छा जागृत हुई।

उन्हें तार भेजने के बाद 20 मई, 1938 के दिन कुमिल्ला रवाना हुआ। कुमिल्ला से बरकान्ता 8-10 मील दूर है, इसलिए हमारे साथी प्रियनाथ बाबू बस स्टेशन ले गये। हम लोग 21 मई को सायंकाल 4 बजे पहुँचे। हम लोगों को ठहरने के लिए एक पक्का भवन पहले से ही सुकुमार बाबू ने ठीक करके रखा था। हम लोग कुछ देर इधर-उधर घूमने के बाद सुकुमार बाबू के घर आये। दरअसल हम लोगों का उद्देश्य बालिका का दर्शन करना था। उनके घर आकर हमारा चित्त प्रसन्न हो उठा। मकान काफी साफ-सुथरा था। आँगन भी साफ था और परिवेश अत्यन्त मनोरम था। घर के दक्षिण स्थित तालाब जल से परिपूर्ण था। सुकुमार बाबू का स्कूल पास ही था। उक्त भवन के एक बड़े कमरे में हम लोगों को बैठाया गया। वहाँ कई कुर्सियाँ सजाकर रखी हुई थीं। इसी कमरे के एक कोने में 18-19 वर्ष की एक लड़की प्रसन्न मुद्रा में बैठी थी। हम लोगों ने अभिवादन किया और इसके बाद कुर्सी पर बैठे।

बालिका ने अभिवादन करने के बाद कहा—"आप लोग आये हैं, यह देखकर मैं आनन्दित हूँ।"

मैंने कहा—"यहाँ आने की इच्छा मेरी पहले से थी। देवहरि बाबू का पत्र आने के पहले से ही। क्या यह बात तुम्हें ज्ञात थी?"

बालिका ने कहा—"जी हाँ।"

मैंने पूछा—"कब, किस समय जान पायी थी?"

बालिका ने कहा—"जिस दिन ब्रह्म-साक्षात्कार हुआ था।"

मैंने कहा—"ब्रह्म-साक्षात्कार के साथ क्या सभी प्रकार की बड़ी-छोटी घटनाएँ ज्ञात हो जाती हैं?"

उसने कहा—"हाँ, पूर्ण ज्ञान होने पर यह सम्भव होता है, वरना नहीं।"

मैंने पूछा—"इस विषय में मेरे कुछ सवाल हैं।"

उसने कहा—"कहिये।"

मैंने कहा—"तुमने जो पूर्ण ब्रह्मज्ञान की चर्चा की, ब्रह्मज्ञान और पूर्ण ब्रह्मज्ञान में किसी प्रकार का भेद या पार्थक्य है?"

उसने कहा—"हाँ, भेद है। ब्रह्मज्ञान सामान्य ज्ञान है और पूर्ण ब्रह्मज्ञान सामान्य ज्ञान के साथ ही अनन्त विशेष ज्ञान होता है।"

मैंने पूछा—"सामान्य ब्रह्मज्ञान के बाद अखण्ड सत्ता का बोध होता है, पर विशेष ज्ञान की भूमि पर विचरण करना सम्भव नहीं होता और न होने की सम्भावना रहती है। जब कि योगी सामान्य ब्रह्मज्ञान के द्वारा इच्छा-शक्ति जाग्रत कर विशेष ज्ञान प्राप्त कर सकता है। पूर्ण ब्रह्मज्ञान के बाद उस प्रकार की इच्छा-शक्ति की आवश्यकता नहीं होती। उस समय सामान्य ज्ञान तथा विशेष ज्ञान दोनों ही रहते हैं। योगी को अगर ब्रह्मज्ञान न हो, तो क्या वह इच्छा-शक्ति के प्रभाव से सब कुछ जान सकता है?"

बालिका ने कहा—"इच्छा-शक्ति का उदय कहाँ से होगा? जब तक अखण्ड सत्ता का ज्ञान न हो तब तक इच्छा-शक्ति का लाभ कभी प्राप्त नहीं हो सकता। इच्छा मात्र में ही शक्ति है।"

तब मैंने अनुभव किया कि बालिका ठीक कह रही है। इसके बाद विभिन्न विषयों पर बातें होती रहीं। बातचीत के सिलसिले में अवतारवाद की चर्चा चल पड़ी। उसने कहा—"मेरी दृष्टि में वास्तव में भगवान् का कभी अवतार नहीं होता या अवतार के रूप में वे कभी नहीं आते।"

मैंने पूछा—"तब भगवान् का अवतार है, कहकर क्यों माना जाता है? क्यों भगवान् का अवतार है, कहा जाता है?"

उसने कहा—"उसका कारण यह है कि जीव भगवान् के साथ सायुज्य प्राप्त कर उसके साथ अभिन्न हो जाता है। इसलिए एक दृष्टि से उन्हें भगवान् का अवतार कहने पर कोई दोष नहीं होता। वास्तव में भगवान् की कोई अंश-कला नहीं होती, सब कुछ उनकी शक्ति की लीला है। शास्त्रों में अनेक बातों का गुप्त रूप से उल्लेख है जो आज तक प्रकट नहीं हुई हैं।"

आगे उसने कहा—"जब तक दृष्टि नहीं खुलेगी तब तक वे समझ में नहीं आ सकतीं।"

बालिका ने पाण्डवों के महाप्रस्थान और विशेष रूप से युधिष्ठिर का सशरीर स्वर्ग-गमन के बारे में अनेक बातें बतायी थीं जिसका यहाँ उल्लेख करना अनावश्यक है।

शोभा के पिता श्री सुकुमार राहा ने मुझसे कहा—"आप अपने पूज्य गुरुदेव के बारे में कुछ सुनाइये।"

राहाजी के अनुरोध पर मैंने अपने गुरुदेव के बारे में कुछ अलौकिक घटनाओं का जिक्र किया। इसके बाद हम वहाँ से चले आये।"

❑ ❑ ❑

सुकुमार बाबू बरकान्ता गाँव में स्थित स्कूल के मास्टर थे। एक दिन स्कूल से वापस आने पर उन्होंने देखा—शोभा के मस्तक पर बड़े सुन्दर ढंग से तिलक लगा है। उन्होंने पूछा—"क्यों बेटी, यह तिलक किसने लगाया?"

शोभा माँ ने कहा—"आज दोपहर को जब भोग लगा रही थी तब महाराजजी ने कहा कि मेरे पास आकर बैठ। आज तुझे तिलक लगा दूँ। आज, कल और परसों तीन दिन तुझे तिलक लगाऊँगा। कैसे लगाया जाता है देख लेना। इसके बाद से स्वयं अपने हाथ से लगाना। इतना कहने के पश्चात् मेरा चिबुक पकड़कर मेरे माथे पर तिलक लगाने लगे। इसके साथ ही मेरा बाह्यज्ञान लुप्त हो गया।"

सुकुमार बाबू ने सोचा—जब तीन दिन लगातार तिलक लगाया जायगा तब कल मैं आकर देखूँगा। उन्होंने अपनी इच्छा को प्रकट नहीं किया।

दूसरे दिन सुकुमार बाबू स्कूल से जल्द लौट आये। शोभा उनके सामने पूजा-घर में भोग लगाने गयी। पाँच मिनट बाद दूध का खाली कटोरा लेकर बाहर आयी। इस बीच कल की तरह उसके मस्तक पर टीका लग चुका था।

प्रश्न करने पर उसने कहा—"आसन पर बैठने के साथ ही बाबाजी महाराज तथा अन्य देवी-देवतागण आये। इसके बाद क्या हुआ, पता नहीं।"

सुकुमार बाबू ने पूजा-घर में प्रवेश करके देखा—आज सबेरे जिस स्थान पर चन्दन की लकड़ी और पत्थर रख गये थे, वह सामग्री वहीं उसी हालत में रखी है। दूसरे दिन शोभा के कहने पर देखा कि शोभा के मस्तक और नाभि में तिलक लगाये गये हैं।

इस घटना के बाद शोभा माँ स्वयं अपने हाथ से तिलक लगाती थीं। इसे निम्बार्क-सम्प्रदाय में 'स्वरूप' कहा जाता है।

सुकुमार बाबू के परिचितों में शिशिरकुमार भी थे। शोभा के चमत्कारों को वे सुन चुके थे। उसके मन में यह सवाल उठा कि शोभा अपने पूर्व जन्म के बारे में कुछ पता सकती है या नहीं। इसी इच्छा को लेकर वे आये और शोभा माँ से प्रश्न किया।

इस प्रश्न को सुनकर शोभा माँ समाधिस्थ हो गयीं। इसके बाद वे कहने लगीं—"मेरे पूर्वजन्म के पिता का नाम प्रमोदचन्द्र चट्टोपाध्याय और माता का नाम अक्षयासुन्दरी था। मुझे लोग कात्यायनी के नाम से पुकारते थे। कात्यायनी को आठ वर्ष की उम्र में ही देवी-कृपा प्राप्त हो गयी थी। उन दिनों उसका कोई गुरु नहीं था। त्रिपुरा ज़िले के कुण्डा गाँव में ही उसके माता पिता-रहते थे। (बाद में पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि बात सही है, पर प्रमोदबाबू वंश-परम्परा से यहाँ नहीं रहते थे। कहीं से आकर यहाँ बस गये थे।) कात्यायनी जब 10 वर्ष की हुई तब कुण्डा गाँव वाला मकान बेचकर काशी चले गये थे। वर्तमान समय में जिस मकान में सुकुमार बाबू हैं, इसी मकान में कात्यायनी को देवी-कृपा प्राप्त हुई थी। काशी जाकर कात्यायनी बराबर साधन-भजन करती रही। पचास वर्ष की उम्र में अविवाहिता अवस्था में स्वर्गवासी हो गयी थी।

सन् 1938 ई० के वैशाख मास में सुकुमार बाबू को एक पत्र प्राप्त हुआ जिससे यह मालूम हुआ कि किसी व्यक्ति ने कलकत्ता के 'अमृत बाजार पत्रिका' में एक लेख लिखते हुए लिखा है कि शोभा माँ सन्तदास की शिष्या नहीं हैं। इस पत्र को पाकर सुकुमार बाबू क्षोभ से फट पड़े। नाम-ग्रहण करने की जितनी प्रक्रिया होती है, वह सारी प्रक्रिया उनके सामने हुई है। दो रुपये भेंट दी गयी थी। किसी कार्य में कोई त्रुटि नहीं हुई थी, फिर इस तरह सफेद झूठ क्यों लिखा गया? उन्होंने निश्चय किया कि इस समाचार का जोरदार प्रतिवाद करूँगा।

उन्होंने इस घटना की सूचना शोभा माँ को दी। सारी बातें सुनने के बाद शोभा माँ ने कहा—"यह सब गुरुजी की लीला है।"

लेकिन सुकुमार बाबू को इस उत्तर से संतोष नहीं हुआ। वे भीतर ही भीतर उफनते रहे और प्रतिवाद लिखने की तैयारी करने लगे।

दूसरे दिन पूजा-घर से बाहर निकलते ही शोभा माँ ने कहा—"पिताजी, बाबाजी महाराज ने कहा है कि सुकुमार बेकार कष्ट पा रहा है। उससे कह दो कि प्रतिवाद करने की जरूरत नहीं है। सत्य तो सत्य ही रहेगा।"

❑ ❑ ❑

सन् 1943 ई० में सुकुमार बाबू का देहान्त हो गया। इसके बाद शोभा माँ के प्रभाव का विस्तार होता गया। दुरारोग्य चेचक का रोगी अपनी पीड़ा से मुक्ति पाने के लिए माँ के पास आते तब माँ अपने को स्थिर नहीं रख पातीं। रात को जब लोग विश्राम करते तब अँधेरे में चुपचाप आश्रम से बाहर आकर रोगी के घर पहुँच जातीं। उसके सिरहाने बैठकर उसके शरीर पर हाथ फेरने लगतीं। धीरे-धीरे रोगी की यंत्रणा दूर हो जाती थी।

मुमुक्षु संतान की मृत्यु के पूर्व माँ उसके निकट पहुँच जाती हैं। उसे इष्ट और गुरु के दर्शन करा देती हैं। तुरत वह भव-बंधन पार कर चल देता है।

सन् 1954 में आसाम-बंगाल में भयंकर बाढ़ आयी थी। कहीं-कहीं रेलवे लाइन डूब गयी थी। 23 अगस्त को रेलवे के वरिष्ठ इंजीनियर श्री यतीन घोष को स्थिति की जाँच के लिए भेजा गया। वे गाड़ी के इंजन पर बैठकर रवाना हुए। मार्ग में एक नदी पर पुल था। ज्योंही इंजन पुल पर चढ़ा त्योंही पुल टूट गया। इंजन के साथ कुछ डिब्बे पानी में गिर पड़े। इंजन में ड्राइवर, दो फायरमैन, एक ट्रालीमैन और यतीनबाबू थे।

इंजन को पानी में गिरते देख यतीनबाबू के मुँह से अचानक निकल पड़ा— "जय माँ—जय माँ! रक्षा करो।" इसके बाद वे पानी के भँवर में खो गये। वहाँ पानी का वेग इतना था कि इंजन भी अपनी जगह से 400 फुट दूर बह गया था।

दूसरे दिन इस घटना की सूचना जलपाईगुड़ी यानी यतीनबाबू की ससुराल पहुँच गयी।

इस सूचना को पाते ही उनकी पत्नी हाय-तोबा न मचाकर चुपचाप पूजा-घर में चली गयी जहाँ शोभा माँ का चित्र रखा हुआ था। चित्र के सामने लोटपोट करती हुई आकुल स्वर में वह कहने लगी—"माँ, यह क्या हुआ? वे तो तुम्हारे अनुगत सेवक हैं। अपनी संतान को इस प्रकार सजा दोगी? क्या उसकी अकालमृत्यु होगी?"

यह सब कहते-कहते वह बेहोश हो गयी। कुछ देर बाद शान्त-गंभीर चेहरा लिए वह पूजा-घर से बाहर आयी। अपने माता-पिता की ओर देखती हुई बोली— "आप लोग चिन्तित न हों। आपका दामाद घर आयेगा। उसे बचाने के लिए माँ नदी में उतर गयी हैं। मैंने अपनी आँखों से देखा कि हम दोनों एक साथ दुर्गा माँ की पूजा कर रहे हैं। माँ (शोभा माँ) ने मुझे यह सब दृश्य दिखाते हुए कहा कि इन सब पर अविश्वास मत करना।"

बेटी की बात पर माँ-बाप को विश्वास नहीं हुआ। इन लोगों ने समझा कि इस हादसे के कारण बेटी को जबर्दस्त चोट पहुँची है। यह अपने मस्तिष्क का सन्तुलन खो बैठी है। कहीं पागल न हो जाय। उसके सामने किसीने कुछ नहीं कहा, पर आड़ में सभी आँसू बहाते रहे।

इधर यतीनबाबू नदी में गिरने के साथ ही बेहोश हो गये। काफी दूर जाकर एक जंगल के किनारे एक पेड़ की जड़ में जाकर अटक गये। पता नहीं, कितनी देर तक वे बेहोश रहे। होश आने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि दाहिने पैर के पंजे में काफी चोट लगी है। किसी सूरत से एक पेड़ पर चढ़ गये जहाँ लगातार छ: दिनों तक अनाहार बैठे रहे। जब बाढ़ में कमी हुई तब नीचे उतरकर गिरते-पड़ते रवाना हुए।

काफी दूर आने पर उन्हें रेलवे लाइन दिखाई दी। उन्होंने गौर से देखा तो ज्ञात हुआ कि कुछ दूरी पर लोग लाइन की मरम्मत कर रहे हैं। कराहते हुए उन्होंने उन सभी का ध्यान आकर्षित किया।

आर्तस्वर सुनकर कुछ लोग दौड़े हुए आये तो देखा कि यह तो उनके इंजीनियर साहब हैं। इन लोगों का विश्वास था कि इंजन के भीतर जितने लोग थे, सभी की जल-समाधि हो गयी है। यतीनबाबू को इस हालत में देखकर सभी अस्पताल ले आये जहाँ चिकित्सा की व्यवस्था हुई।

जलपाईगुड़ी में समाचार जाते ही यतीनबाबू के घर के लोगों को विश्वास हो गया कि उनके दामाद की रक्षा शोभा माँ की कृपा से हुई है।

सन् 1958 ई० में संत-मन्दिर की स्थापना काशी में हो रही थी। इस अवसर पर सभी भक्तों को निमंत्रण भेजा गया। मेदिनीपुर-निवासी श्री सुधीरकुमार मित्र गोमो स्टेशन आये। यहीं से उन्हें सपरिवार बनारस आना था। दुर्गा-पूजा का अवसर था। गाड़ी में असम्भव भीड़ थी। लोग पावदान पर खड़े होकर सफर कर रहे थे। सवार होने को कौन कहे, तिल रखने का स्थान नहीं था। सुधीरबाबू अकेले नहीं थे। पत्नी के अलावा चार बच्चे, बक्स, बिछौना आदि सामान थे।

एक-एक कर दो गाड़ियाँ चली गयीं, पर वे उन गाड़ियों पर सवार नहीं हो सके। कई घण्टे बाद तीसरी गाड़ी आयी। इस पर भी चढ़ने का निष्फल प्रयत्न करने लगे। टिकट-चेकर और गार्ड से कहने पर भी कोई सहायता नहीं मिली। मन में उन्हें बड़ा कष्ट हुआ।

तभी मन ही मन शोभा माँ का स्मरण करते हुए बोल उठे—"माँ, सारा कामधाम छोड़कर तुम्हारे चरणों का दर्शन करने के लिए चला तो यह दुर्भाग्य कष्ट दे रहा है। लगता है, मैं आपका दर्शन नहीं कर पाऊँगा। क्या मेरी यह आकांक्षा पूरी नहीं होगी?"

इसी चिन्तन में आँसू बहाने लगे। तभी अनाहूत की तरह एक टिकट-चेकर आया और उन्हें तथा बाकी लोगों को सेकण्ड क्लास के डिब्बे में चढ़ा दिया। इस डिब्बे में जगह खाली थी। इधर गाड़ी ने सीटी दी और गार्ड हरी झण्डी दिखाने लगा।

सभी लोग गाड़ी पर चढ़ गये थे तभी सुधीरबाबू को ख्याल आया कि सामान तो वेटिंग रूम में ही रह गया। टिकट-चेकर से यह बात कहते ही वह तुरत वेटिंग रूम की ओर दौड़ा। गाड़ी पर सामान रखते ही गाड़ी रवाना हो गयी।

जब मन शान्त हुआ तब वे सोचने लगे कि यह सब माँ की कृपा से ही हुआ। आखिर यह टिकट-चेकर कौन था? कई स्टेशनों पर वे उसकी तलाश करते रहे ताकि उसे धन्यवाद दे दें, पर वह कहीं नहीं दिखाई दिया।

इसी प्रकार की एक विचित्र घटना बाँकुड़ा-निवासी चौधरी साहब के साथ हुई थी। वे धनबाद जाने के लिए एक स्टेशन पर उतर गये। इस स्थान से धनबाद 8 मील दूर है। स्टेशन से बाहर आकर उन्होंने देखा—चारों ओर सन्नाटा है। रात के अँधेरे में एक दुकानदार लालटेन की रोशनी में अपनी दुकान पर बैठा है। यहाँ

सवारियों के लिए दिन-रात गाड़ियाँ खड़ी रहती हैं। आखिर आज क्या बात है? लम्बा सफर है, इस सन्नाटे में कैसे रहेंगे? पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि सर्वश्री क्रुश्चेव और बुल्गानिन साहब माइथन बाँध देखने आये हैं, इसीलिए सारी गाड़ियाँ रिजर्व हो गयी हैं।

जाड़े की रात। राधारमण चौधरी पसीने-पसीने हो गये। आखिर रात को वे कहाँ जायेंगे। कौन अपरिचित व्यक्ति को स्थान देगा? कातर भाव से वे शोभा माँ का स्मरण करने लगे।

थोड़ी देर बाद न जाने कहाँ से एक गाड़ी उनके सामने आकर खड़ी हो गयी। उससे बात करते ही वह राजी हो गया और भाड़ा रेट से भी कम माँगा। अगर उस वक्त वह अधिक भी माँगता तो राधारमण उसे मुंहमाँगा किराया दे देते।

❑ ❑ ❑

महापुरुषों के साथ रहने पर कभी-कभी अलौकिक दर्शन हो जाता है। सन् 1955 ई० में शोभा माँ पुरी-दर्शन करने गयी थीं। साथ में कुछ लोग थे।

एक दिन समुद्र-किनारे सभी बैठे थे। बातचीत के सिलसिले में आभा दासगुप्ता ने आदर के साथ कहा—"माँ, आपके साथ हम लोगों को अनेक तीर्थों का दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, कुछ लोगों को देवी-देवता के दर्शन भी हुए हैं, पर हमें यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ।"

आभा की बातों का सभी लोगों ने समर्थन किया। माँ कुछ देर चुप रहने के बाद बोलीं—"चलो, जरा हम लोग स्वर्गद्वार का चक्कर लगा आयें।"

सभी लोगों के साथ कुछ दूर आने के बाद माँ ने अचानक कहा—"देखो, देखो, वह व्यक्ति कितने अद्भुत् ढंग से पानी पर चल रहा है। लेकिन यह भी देखो कि पानी उसके पंजों से ऊपर नहीं उठ रहा है।"

यह एक अद्भुद दृश्य था। पानी के ऊपर यह कौन चल रहा है। सभी अवाक् होकर देखने लगे।

माँ ने कहा—"चलो, अब घर चलें।"

घर चलने के लिए लोग मुड़ गये। रह-रहकर पीछे पलटकर देखते रहे। वह व्यक्ति पानी पर चलते-चलते अचानक न जाने कहाँ अदृश्य हो गया। यह देखकर किसीने पूछा—"माँ, वह आदमी न जाने कहाँ गायब हो गया? कौन था?"

माँ ने कहा—"समुद्रदेव।"

इतना सुनते ही सभी समझ गये कि इस दृश्य के द्वारा माँ ने समुद्रदेव का दर्शन उन्हें कराया।

●

प्रमुख जीवन-चरित : मनीषी, संत, महात्मा

बुद्ध और उनकी शिक्षा (प्रश्नोत्तरी),	हेनरी यस० ऑल्कॉट *अनुवादक : छत्रधारी सिंह, डॉ० प्रेमनारायण सोमानी*
तथागत (आत्मकथात्मक उपन्यास)	डॉ० बाबूराम त्रिपाठी
करुणामूर्ति बुद्ध	डॉ० गुणवन्त शाह
महामानव महावीर	डॉ० गुणवन्त शाह
रावण की सत्यकथा	रामनगीना सिंह
कथा त्रिदेव की	रामनगीना सिंह
तुकाराम गाथा (*संतश्रेष्ठ तुकाराम के चुने हुए अभंगों का हिन्दी भावानुवाद*)	अनु० : ना०वि०सप्रे
काशी के विद्यारत्न संन्यासी	पं० बलदेव उपाध्याय
श्री श्री सिद्धिमाता	राजबाला देवी
योगिराज तैलंग स्वामी	विश्वनाथ मुखर्जी
ब्रह्मर्षि देवराहा-दर्शन	डॉ० अर्जुन तिवारी
प्रकाश-पथ का यात्री (*एक सिद्ध योगी की आत्मकथा*)	योगेश्वर
अघोर पंथ और संत कीनाराम	डॉ० सुशीला मिश्र
शिवस्वरूप बाबा हैड़ाखान	सद्गुरुप्रसाद श्रीवास्तव
नीब करौरी के बाबा	डॉ० बदरीनाथ कपूर व परीक्षित कुमार चोपड़ा
बाबा नीब करौरी के अलौकिक प्रसंग	बच्चन सिंह
सोमबारी महाराज (*उत्तराखण्ड की अनन्य विभूति*)	हरिश्चन्द्र मिश्र
संत रज्जब (नवीन संस्करण)	डॉ० नन्दकिशोर पाण्डेय
सन्त रैदास	श्रीमती पद्मावती झुनझुनवाला
रैदास परिचई	डॉ० शुकदेव सिंह
समर्थ रामदास	ना०वि० सप्रे
योगिराजाधिराज श्री श्री विशुद्धानन्द परमहंस	अक्षयकुमारदत्त गुप्त कविरत्न
योगिराज विशुद्धानन्द प्रसंग तथा तत्त्व कथा	पं० गोपीनाथ कविराज
सूर्य विज्ञान प्रणेता योगिराजाधिराज स्वामी विशुद्धानन्द परमहंसदेव : जीवन और दर्शन	नन्दलाल गुप्त
Yogirajadhiraj Swami Vishuddhanand Paramhansdeva : Life & Philosophy	*Nand Lal Gupta*
महाराष्ट्र के संत-महात्मा	ना०वि० सप्रे
महाराष्ट्र के कर्मयोगी	ना०वि० सप्रे
आधुनिक भारत के युग प्रवर्तक संत*	लक्ष्मी सक्सेना
उत्तराखण्ड की सन्त परम्परा	डॉ० गिरिराज शाह
पूर्वांचल के संत महात्मा	परागकुमार मोदी
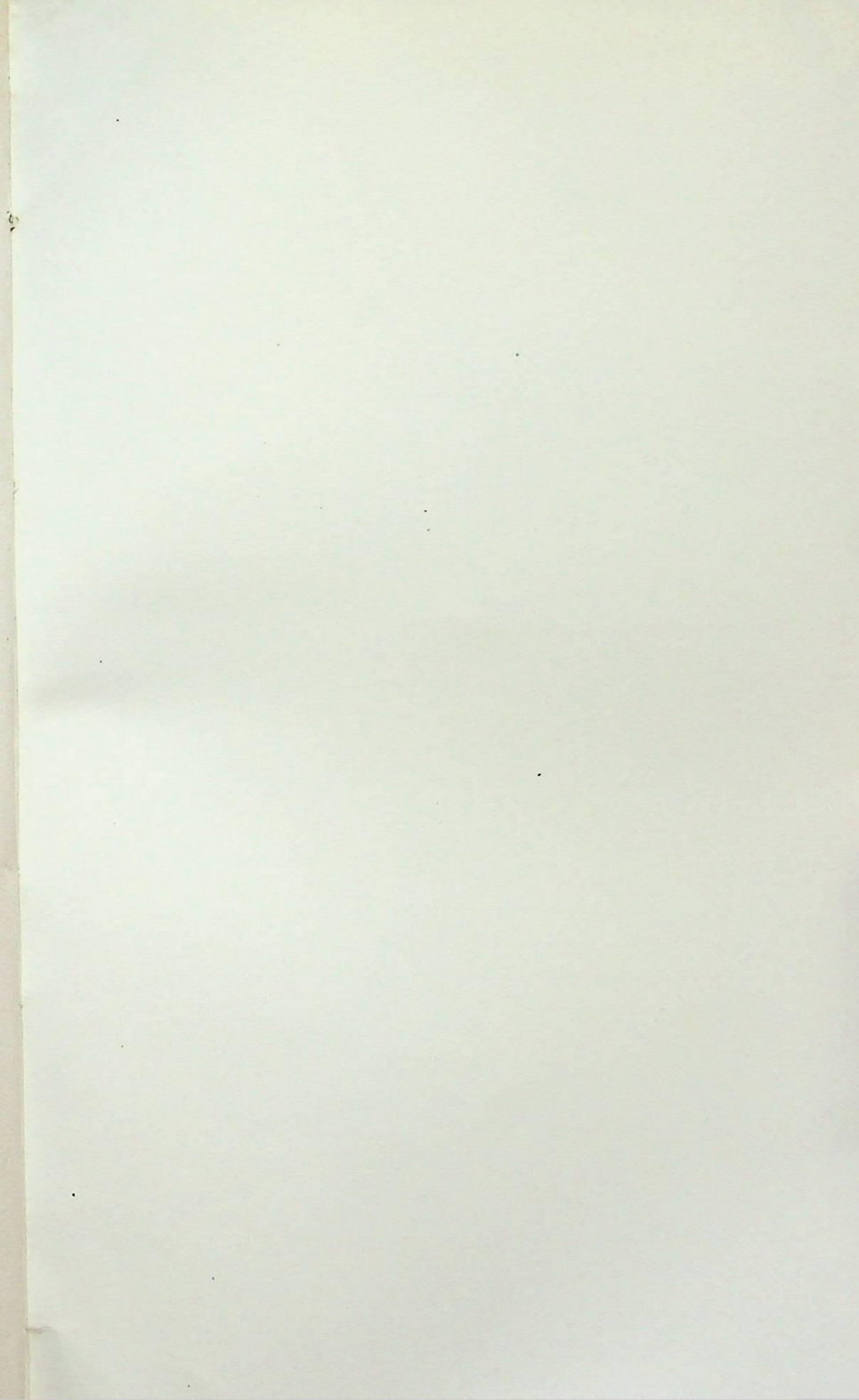
भारत के महान योगी

विश्वनाथ मुखर्जी

चौदह भाग, ७ जिल्द में, प्रत्येक सौ रुपये

भारत योगियों, संतों, साधकों और महात्माओं का देश है। देश के सभी भागों में अनेक योगी तथा संत हुए हैं जिन्होंने देश की चिन्तनधारा और जीवन को प्रभावित किया है। अपने चमत्कारी जीवन से जनमानस को चमत्कृत भी किया है। ऐसे योगियों का जीवन-चरित चौदह भागों (७ जिल्द) में प्रस्तुत किया गया है।

भाग : १-२ तंत्राचार्य सर्वानन्द, लोकनाथ ब्रह्मचारी, प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी, वामा खेपा, परमहंस परमानन्द, संत ज्ञानेश्वर, संत नामदेव, संत रविदास, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस।

भाग : ३-४ योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी, महर्षि रमण, भूपेन्द्रनाथ सान्याल, योगी वरदाचरण, नारायण स्वामी, बाबा कीनाराम, तैलंग स्वामी, परमहंस रामकृष्ण ठाकुर, जगद्गुरु शंकराचार्य, सन्त एकनाथ।

भाग : ५-६ स्वामी रामानुजाचार्य, रामदास काठिया बाबा, राम ठाकुर, साधक रामप्रसाद, भूपतिनाथ मुखोपाध्याय, स्वामी भास्करानन्द, स्वामी सदानन्द सरस्वती, पवहारी बाबा, हरिहर बाबा, सांई बाबा, रणछोड़दास महाराज, अवधूत माधव पागला।

भाग : ७-८ किरणचन्द्र दरवेश, स्वामी अद्‌भुतानन्द (लाटू महाराज), भोलानन्द गिरि, तंत्राचार्य शिवचन्द्र विद्यार्णव, महायोगी गोरखनाथ, बालानन्द ब्रह्मचारी, प्रभु जगद्‌बन्धु, योगिराज गंभीरनाथ, ठाकुर अनुकूलचन्द्र, बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ, मोहनानन्द ब्रह्मचारी, कुलदानन्द ब्रह्मचारी, अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी, स्वामी प्रणवानन्द, बाबा लोटादास।

भाग : ९-१० भक्त नरसी मेहता, सन्त कबीरदास, नरोत्तम ठाकुर, श्रीम, स्वामी प्रेमानन्द तीर्थ, सन्तदास बाबाजी, बिहारी बाबा, स्वामी उमानन्द, पाण्डिचेरी की श्रीमाँ, महानन्द गिरि, अन्नदा ठाकुर, परमहंस योगानन्द गिरि, साधु दुर्गाचरण नाग, निगमानन्द सरस्वती, नीब करौरी के बाबा, परमहंस पं० गणेशनारायण, अवधूत अमृतनाथ, देवराहा बाबा।

भाग : ११-१२ बालानंद ब्रह्मचारी, श्री भगवानदास बाबाजी, हंस बाबा अवधूत, महात्मा सुन्दरनाथजी, मौनी दिगम्बरजी, गोस्वामी श्यामानन्द, फरसी बाबा, भक्त लाला बाबू, श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी, नंगा बाबा, तिब्बती बाबा, गोस्वामी लोकनाथ, काष्ठ-जिह्वा स्वामी, रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, अवधूत नित्यानन्द।

भाग : १३-१४ श्री मधुसूदन सरस्वती, आचार्य रामानुज, आचार्य रामानन्द, अद्वैत आचार्य, चैतन्यदास बाबाजी, भक्त दादू, गुरुनानक देव, सिद्ध जयकृष्ण दास, शैवाचार्य अप्पर, साधक कमलाकान्त, राजा रामकृष्ण, यामुनाचार्य, आचार्य मध्व, स्वामी अभेदानन्द, भैरवी योगेश्वरी, सिद्धा परमेश्वरी बाई।

Rs. 60.00
ISBN 978-81-89498-31-3

अनुराग प्रकाशन
विशालाक्षी भवन,
चौक, वाराणसी - 221001
Phone & Fax : **(0542) 2421472**
Shop at : **www.vvpbooks.com**